गंगा-पुस्तकमाला का साठवाँ पुष्प

लवड़धोंधों

[६ प्रहसनों का संग्रह]

लेखक

श्रीबदरीनाथ भट्ट बी० ए०

लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिंदी-अध्यापक और

दुर्गावती, हिंदी, बाल-नीति-कथा, चंद्रगुप्त,

वेन-चरित्र आदि के लेखक

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

प्रकाशक और विक्रेता

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १।=)] संवत १९८३ [सादी ॥।=)

प्रकाशक
श्री छोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



मुद्रक
श्रीकेसरीदास सेठ
नवलकिशोर-प्रेस
लखनऊ

काशी के सुप्रसिद्ध रईस,

ललित कला-मर्मज्ञ, हिंदी-हितैषी,

सुहृद्वर

राय कृष्णदासजी

को

सादर और सस्नेह

समर्पित

वक्तव्य

हिंदी के सुप्रसिद्ध हास्यरस-लेखक पं० बदरीनाथजी भट्ट के लिखे हुए ६ प्रहसन आज पाठकों के सम्मुख उपस्थित किए जा रहे हैं। इतने अच्छे और अप-टु-डेट, साथ ही सभ्य हास्यरस-पूर्ण, प्रहसन हिंदी में और किसी प्रहसनकार ने लिखे हैं, इसमें संदेह है। ये सभी रंगमंच पर सफलता के साथ खेले जा सकते हैं। आशा है, पाठकों का इनसे यथेष्ट मनोरंजन होगा।

भट्टजी ने अभी हाल ही में एक और उत्कृष्ट प्रहसन लिखा है। उसका नाम है "विवाह-विज्ञापन"। वह भी गंगा पुस्तकमाला में शीघ्र ही प्रकाशित होगा। हमारा ख्याल है कि उसमें भी पाठक महोदय भट्टजी की अद्भुत कल्पना-शक्ति और प्रशस्त प्रतिभा का परिचय पाकर परम प्रसन्न होंगे।

आशा है, भट्टजी ऐसी ही पुस्तक-मणियों से भाषा-भांडार को भरते रहेंगे।

लखनऊ
१।१२।२६

दुलारेलाल भार्गव

प्रहसन-सूची



लंबी घोंघों

(१)

पुराने हा ़म साहब का नया नौकर

(पहला दृश्य)

(अपने कमरे में अकेले घूमते हुए)

ाम—

क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता ;
मगर चुप भी रहा नहीं जाता ।

एव न वह था कि सैकड़ों-हज़ारों, बल्कि लाखों नौकर मे ख़िदमत बजाने में फ़ख़ समझते थे और मेरे हुक्म की ाल इस तरह करते थे कि बस, ज़रा से इशारे से ही चिड़ी-सा की तरह मारे-मारे फिरते थे। मगर अफ़सोस ! सद फ़सोस ! कि मुझे आज एक अच्छा नौकर मयस्सर नहीं ता ! जो आता भी है वह दो-चार दिन ठहरकर, बिना ़ख़्वाह की परवा किए, इस तरह भाग खड़ा होता है ने माल लेकर चोर खिसक जाता है ! बाज़ारवाले दे-

मान न-जाने उसे क्या-क्या बहका देते है ! उधर घर मे उन दोनो को सिवा 'नौकर लाओ ! नौकर लाओ !' के और कुछ काम ही नही ! गोया मेरे यहाँ कोई नौकरो की एजेंसी है !

(दोनो स्त्रियो का प्रवेश)

बड़ी बीवी—देखो जी, बस कह दिया है कि अगर आज किसी सूरत से नौकर न आया तो घर मे खाने-वाने का कुछ भी इतजाम न होगा !

छोटी—भला यह भी कोई बात है कि आए-दिन हमी सारा घर झाड़े-बुहारे ! तो क्या हम कोई घर की मालकिन नही, भंगिन ठहरी !

बडी—और सारी दुनिया को तो नौकर मिलते है, तुम्हे कोई नौकर ही नही मिलता !

छोटी—ऐसे तुम्ही कुछ अलबेले हो !

हाकिम—अरे भाई, मै तुम लोगों को कैसे समझाऊँ कि आजकल तरक्की का जमाना है !

बडी—मरा मुआ तरक्की का जनाना, तरक्की का तो मरदाना ही है—जनाना नही ! जनाना तो विचारा मुसीबत है जो बरतन रगडते-रगड़ते—

छोटी—और झाड़ू देते-देते—हाँ, तुम्हे किसी दिन लगाने पड़े तो मालूम हो—

हाकिम—अरे बाबा, तो क्या करूँ—

बड़ी—किसी-न-किसी सूरत से—

छोटी—और कितनी ही तनख़्वाह पर नौकर रक्खो।

हाकिम—तो क्या कोई बी० ए० पास नौकर रख लूँ? बी० ए० पासवाले आजकल बहुत मारे-मारे फिरते है। बोलो—

बड़ी—हमें पास और दूर से कुछ मतलब नहीं, चाहे बड़ी पासवाला हो और चाहे बड़ी दूरवाला।

छोटी—बस, मैंने कह दिया कि आज न झाड़ू लगेगी और न बरतन साफ होंगे। आप जाने, आपका काम जाने।

हाकिम—तो तुम लोग आखिर बैठी-बैठी क्या करोगी? खाली बैठे-बैठे मन भी तो—

दोनों—(क्रोध से) तुम्हारा सिर करेंगे। बाहर हाकिमी चल जाती होगी, घर मे न चलेगी: समझ लो। (गईं)

हाकिम—(आप-ही-आप) भला अब कहिए, कैसे काम नौकर कहाँ मिले? कोई कंबख़्त मुझे नादिहंद बतला- ूचक्कर होता है, और कोई मेरी गाली-गलौज की आदत आकर अपनी नौकरी को रोता है। भला मेरी की आदत, मै कहीं नौकरों से दबकर रहूँगा! उन- गुस्ताखियाँ सहूँगा, और उनसे कुछ न कहूँगा!

न तो काम खराब होने पर पैसे काटूँगा, और न कभी ज़रा भी डाटूँगा ! वाह रे तरक़्क़ी के ज़माने ! तेरी बलिहारी—जो तूने मालिक को तो नौकरों का नौकर, और नौकर को मालिक का मालिक, बल्कि उसका भी बाबा बना दिया ! इससे तो वही पुराना ज़माना अच्छा था जब गेहूँ बत्तीस सेर के बिकते थे। अगर आज मैं अपनी जगह पर होता—(सोचते हुए) क्या कहूँ, बेईमानों ने रिशवत का मुक़दमा चलवा करके—खुदा उनको गारत करे—हाँ, अगर आज मैं अपनी जगह पर होता तो इन कंबख़्त तरक़्क़ीवालों को वह कोड़े लगाता कि दम-भर में इनका सारा घमंड भुलाता ! भला अब मैं कहाँ तलाश करूँ नौकर ? क्या कहीं से पैदा करके लाऊँ ? क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। (सोचता हुआ) तो फिर खुद ही जाऊँ और जिस तनख़्वाह पर हो सके, किसी उल्लू के पट्ठे को लाऊँ। औ....र, घर का कलेस तो मिटे। (बाहर से आती हुई 'अजी डिप्टी साहब होत्' अजी डिप्टी साहब होत्" की आवाज सुनकर) कौन है ? अरे भाई, किवाड़े ? अंदर चले आओ ; यह देखो सामने इधर।

(नौकरी के एक उम्मेदवार का प्रवेश)

नौकर—(झुककर सलाम करता हुआ) क्या हज़ूर को नौकर की जरूरत है ?

हाकिम—(अकड़कर) तुझे कैसे मालूम ?

नौकर—मुंशी चकमादीन साहब पेंशनर पेशकार ने मुझे आपके पास भेजा है।

हाकिम—हाँ, ठीक है, मुंशीजी से मैंने एक नौकर तलाश कर देने को कहा था और उन्होंने वादा भी किया था। अच्छा, वह तू ही है? तू अच्छी तरह नौकरी बजा सकेगा?

नौकर—क्या घंटा बजाने की नौकरी है? हजूर, मेरा क्या जाता है—आप कहेंगे तो दिन-रात घंटे बजाया करूँगा!

हाकिम—अबे बेवकूफ!

नौकर—(चौंककर आप-ही-आप) एक सारटीफिटक् तो मिला!

हाकिम—घंटा-वंटा कुछ नहीं, तू सब काम सँभाल लेगा?

नौकर—जी हाँ, क्यों नहीं। मैं क्या आदमी नहीं हूँ? आदमी का काम आदमी न सँभालेगा तो क्या जानवर सँभालेंगे!

हाकिम—(मुँह बनाकर) तू आयदा कभी जरूरत से जियादा तो न बोलेगा?

नौकर—मुझे क्या मतलब है जो—

हाकिम—दो भले आदमी बात करते होंगे तो बीच में दखल तो न देगा?

नौकर—धरा है मेरे पास देने को दखल सो दे दूँगा!—

हाकिम—तू कहीं बाहरवालों की बातों में मत आ जाइयो।

नौकर—(हाथ जोड़कर) हजूर, कहीं आप ही घरवालों की बातों में मत आ जाइएगा!

हाकिम—क्योंकि कबख्त बाहरवाले—

नौकर—क्योंकि कंबखत घरवाले—

हाकिम—हमेशा मेरे नौकर को भड़का देते और भगा देते है—

नौकर—क्योंकि कबखत घरवाले हमेशा मेरे मालिक को भड़का देते और मुझे निकलवा देते हैं।

हाकिम—कि जिसकी वजह से मुझको कोई नौकर नहीं मिलता!

नौकर—और मुझे कोई नौकरी नहीं मिलती!

हाकिम—मेरे यहाँ दो-चार महीने भी कोई नहीं टिकने पाता—

नौकर—और मैं भी कहीं दो-चार महीने भी नौकरी नहीं कर पाता।

हाकिम—तो तू तनख़्वाह क्या लेगा?

नौकर—जो आप देंगे।

हाकिम—नौकरी छोड़कर तो न भागेगा?

नौकर—कहीं आप ही तो मुझे न छुड़ा देंगे? हजूर, या कहूँ—

हाकिम—एक कागज पर अँगूठे का निशान करना होगा कि मैं कभी नौकरी न छोड़ूँगा।

नौकर—तो हजूर को भी एक कागज लिखना होगा कि मुझे कभी नौकरी से न छुड़ावेंगे।

हाकिम—हम न लिखेंगे।

नौकर—तो मैं भी न लिखूँगा; दूसरी जगह नौकरी कर लूँगा।

हाकिम—(आप-ही-आप) वाह रे तरक्की के जमाने ! (नौकर से) अच्छा भाई, सुन, अगर तू छोड़ जाय तो ?

नौकर—अगर आप छुड़ा दें तो ?

हाकिम—हम सौ रुपए दें—

नौकर—मैं नौ महीने का जेलखाना भुगतूँ—

हाकिम—अच्छा, ले लिखे देते हैं, (धीरे से) अजी कौन पूछता है ! (लिखते हुए) हाँ, तनख़्वाह ?

नौकर—बारह रुपए और ख़ूराक !

हाकिम—(चौंककर) हैं ! क्या यह सुपना नहीं है ?

नौकर—तरक्की का जमाना है. हरएक चीज महँगी है, इससे कम में गरीब आदमी की गुजर नहीं।

हाकिम—अच्छा दस रुपए—

नौकर—तो जाने दीजिए— (जाने लगता है)

हाकिम—अच्छा मरदूद, ले बारह ही सही, (अलग) घर का कलेस तो मिटे।

(नौकर कागज लेकर पढता है)

हाकिम—(अचरज से) क्या तू पढ़ा भी है ?

नौकर—हाँ, कुछ थोडा-सा—

हाकिम—वाह रे जमाने ! अच्छा तो तेरी नौकरी इसी वक्त से तय हुई । जा, भीतर हो आ । (नौकर गया) पढा-लिखा नौकर, और बरतन माँजे ! इल्म की यह बेकदरी ! तभी हिंदोस्तान से सब हुनर उड़ गया । अरे नौकर ! ओ नौकर ! (नौकर आया) तेरा नाम क्या है ?

नौकर—बखतावर ।

हाकिम—तू कौन जात है ?

नौकर—(आप-ही-आप) अब पूछने की याद आई । (प्रकट) गधी ।

हाकिम—यानी ?

नौकर—तेली ।

हाकिम—खूब ! अच्छा तो यहीं मेरे पास बैठ, तब तक मैं चिट्ठी लिख लूँ ।

(हाकिम का चिट्ठी लिखने लगना, नौकर का बैठ जाना, दरवाजा खटकने की आवाज)

हाकिम—जा, देख तो आ—कौन आया है । (नौकर गया) आदमी मालूम तो होशियार होता है, लेकिन कुछ—खैर, काम करते-करते सब सँभल जायगा ।

नौकर—(लौटकर) जी ! देख आया ।

हाकिम—कौन है ?

नौकर—एक आदमी ।

हाकिम—(झुँझलाकर) जाकर पूछ, कौन है, कहाँ का है, क्या नाम है, क्या चाहता है—

नौकर—(उँगलियों पर गिनता हुआ आप-ही-आप) यानी इतनी बातें पूछनी हैं—एक—कौन है ; दूसरी—कहाँ का है ; तीसरी—क्या नाम है ; चौथी—क्या चाहता है । देखिए, याद रह जायँ तभी है । (गया)

हाकिम—धीरे-धीरे सब काम समझ लेगा ; अभी नया बॉगड़ू है ।

नौकर—(लौटकर आप-ही-आप) आखिर वही हुआ न, जिसका मुझे डर था ! (हाकिम से) हजूर, उन सब सवालों का जवाब तो मुझे याद नहीं रहा ; पर हाँ, आपसे मिलना चाहता है, यह बात पक्की समझिए—झूठी हो तो एक-एक चवन्नी शर्त—

हाकिम—(क्रोध से) कैसे कपड़े पहने है ?

नौकर—मजे के हैं ; हाँ, बुरे नहीं, हजूर के कपड़ों से अच्छे हैं ।

हाकिम—(आप-ही-आप) अजीब गधा है । (नौकर से) और हम जो तुझसे कह चुके हैं कि जरूरत से ज़ियादा न बोला कर ?

नौकर—(अपने कान पकडकर) गुस्ताखी हुई, माफ़ कीजिए हज़ूर ।

हाकिम—अच्छा जा, बुला ला भीतर । (नौकर गया; सोचते हुए) कौन होगा ? कहीं वह आईने लगानेवाला तो नहीं है ? क्योंकि उसके भी दाम अभी नही चुकाए हैं—साला भागता फिरता है इधर-उधर; या वह तरकारीवाला हो ?

(नौकर के साथ जिमींदार साहब का प्रवेश)

हाकिम—(कुरसी पर से खडे होकर) आहा, आइए ज़िमींदार साहब । मुआफ फरमाइएगा । कहिए वह खत ? लाइए उनको लिख दूँ । क्या आपने मेरे लिये उस खुंडी भैस को मुहैया करने की कोशिश करने की तकलीफ गवारा करने की इनायत फरमाई ? आपको बड़ी तकलीफ हुई होगी ?

ज़िमींदार—जी हॉ, भैसवाले से बातचीत हो रही है उम्मीद है कि वह जल्द ही आपके नोहरे को रौनक बख़्शने की गरज़ से यहॉ नमूदार होगी । उस खत की गरज से ही मैं यहॉ तशरीफ लाया—नहीं—हाजिर हुआ था—बल्कि हूँ ।

हाकिम—(नौकर से) जा रे, एक कोरा कागज़ तो ले आ वहॉ से । (हाथ का इशारा करते हुए) हमारी सदूक पर होगा । (नौकर गया; जिमींदार से) लीजिए इलायची—(जिमींदार इलायची लेता है) कुछ परवा नहीं, छिलके तश्तरी मे ही रखते जाइए । आप तकलीफ न उठाइए, नौकर फेक देगा ।

नौकर—(लौटकर) उस कागज में दालमोठ बँधी है।

हाकिम—अबे उल्लू—(मेज के खाने में से कागज़ निकालते हुए आप-ही-आप) इससे काम चल जायगा। (नौकर से) रहने दे, यही मिल गया। (छिलकेवाली तश्तरी की ओर संकेत करता हुआ) इसे बाहर फेंक दे। (चिट्ठी लिखने लगता है; नौकर तश्तरी उठाकर ले जाता और बाहर फेंक देता है, उसकी आवाज सुनकर) अबे नामाकूल, यह क्या किया?

नौकर—(लौटकर और हाथ जोड़कर) हुजूर के हुक्म की तामील।

हाकिम—तो मैंने तश्तरी फेंकने को कहा था गधे, या छिलके फेंकने को? वह तो तमाम चकनाचूर हो गई होगी!

नौकर—बहुत अच्छा (बाहर जाकर और फौरन् ही लौटकर) जी हाँ, वह तो, जैसा कि आपने न-जाने किस तरह पहले ही मालूम कर लिया था, फूट गई; अब कहिए और क्या हुकुम?

हाकिम—हुक्म तेरा सर! जा, अपनी किस्मत को फोड़कर ज़रा मोमबत्ती तो ले आ मोहर करने के वास्ते। (इशारे से बतलाता हुआ) उस कमरे मे खिड़की पर रक्खी है।

नौकर—तो पहले किशमिश फोड़ूँ या मोमबत्ती लाऊँ? मुझे क्या है, मुझसे तो जो आप कहेंगे वह करूँगा। कहिए किशमिश फोड़ूँ, कहिए पानी पीसूँ।

हाकिम—(गला फाड़कर) अबे, मोमबत्ती ले आ, मोमबत्ती।

नौकर—(अपने कान पकड़कर) गुस्ताखी हुई, माफ कीजिए हज़ूर।

हाकिम—अच्छा जा, बुला ला भीतर। (नौकर गया; सोचते हुए) कौन होगा? कहीं वह आईने लगानेवाला तो नहीं है? क्योंकि उसके भी दाम अभी नहीं चुकाए हैं—साला भागता फिरता है इधर-उधर; या वह तरकारीवाला हो?

(नौकर के साथ जिमींदार साहब का प्रवेश)

हाकिम—(कुरसी पर से खड़े होकर) आहा, आइए ज़िमींदार साहब। मुआफ फरमाइएगा। कहिए वह खत? लाइए उनको लिख दूँ। क्या आपने मेरे लिये उस खुंडी भैंस को मुहैया करने की कोशिश करने की तकलीफ गवारा करने की इनायत फरमाई? आपको बड़ी तकलीफ हुई होगी?

ज़िमींदार—जी हाँ, भैंसवाले से बातचीत हो रही है उम्मीद है कि वह जल्द ही आपके नोहरे को रौनक बख़्शने की गरज़ से यहाँ नमूदार होगी। उस खत की गरज से ही मैं यहाँ तशरीफ लाया—नहीं—हाजिर हुआ था—बल्कि हूँ।

हाकिम—(नौकर से) जा रे, एक कोरा कागज़ तो ले आ वहाँ से। (हाथ का इशारा करते हुए) हमारी सदूक पर होगा। (नौकर गया; जिमींदार से) लीजिए इलायची—(जिमींदार इलायची लेता है) कुछ परवा नहीं, छिलके तश्तरी में ही रखते जाइए। आप तकलीफ न उठाइए, नौकर फेंक देगा।

नौकर—(लौटकर) उस कागज में दालमोठ बँधी है।

हाकिम—अबे उल्लू—(मेज के खाने में से कागज़ निकालते हुए आप-ही-आप) इससे काम चल जायगा। (नौकर से) रहने दे, यही मिल गया। (छिलकेवाली तश्तरी की ओर संकेत करता हुआ) इसे बाहर फेंक दे। (चिट्ठी लिखने लगता है; नौकर तश्तरी उठाकर ले जाता और बाहर फेंक देता है, उसकी आवाज सुनकर) अबे नामाकूल, यह क्या किया ?

नौकर—(लौटकर और हाथ जोड़कर) हुजूर के हुकुम की तामील।

हाकिम—तो मैंने तश्तरी फेंकने को कहा था गधे, या छिलके फेंकने को ? वह तो तमाम चकनाचूर हो गई होगी !

नौकर—बहुत अच्छा (बाहर जाकर और फौरन् ही लौटकर) जी हाँ, वह तो, जैसा कि आपने न-जाने किस तरह पहले ही मालूम कर लिया था, फूट गई; अब कहिए और क्या हुकुम ?

हाकिम—हुक्म तेरा सर ! जा, अपनी किस्मत को फोड़कर जरा मोमबत्ती तो ले आ मोहर करने के वास्ते। (इशारे से बतलाता हुआ) उस कमरे में खिड़की पर रक्खी है।

नौकर—तो पहले किशमिश फोड़ूँ या मोमबत्ती लाऊँ ? मुझे क्या है, मुझसे तो जो आप कहेंगे वह करूँगा। कहिए किशमिश फोड़ूँ, कहिए पानी पीसूँ।

हाकिम—(गला फाड़कर) अबे, मोमबत्ती ले आ, मोमबत्ती ! उल्लू !

नौकर—तो फिर जैसा आप हुकुम दें, पहले मोमवत्ती लाऊँ या उल्लू ? (दर्शकों की ओर देखता हुआ) भला उल्लू यहाँ कहाँ मिलेगा ?

हाकिम—(गला फाड़कर) मोमवत्ती ! मोमवत्ती ! (नौकर गया) जिमींदार साहब, क्या कहूँ—(नौकर मोमवत्ती ले आया) अवे जलाकर लाया होता जलाकर (नौकर गया ; जिमींदार से) अव्वल दरजे का बेवकूफ है ।

नौकर—(आकर) फिर आप कहेंगे कि यह किया ; बोलिए, एक तरफ से जलाकर लाऊँ कि दोनो तरफ से ?

हाकिम—क्या कहता है बेवकूफ ! दोनों तरफ़ से ? (नौकर गया) देखिए जिमींदार साहब, उल्लू के पट्ठे कहते हैं कि यह तरक्की का जमाना है ! जमाना है इनकी ऐसी-तैसी !

जिमींदार—इसमें क्या शक है ।

हाकिम—म्यॉ थोड़े दिनों में देखना कि बी० ए०-पास घास खोदते दीखेंगे वास । (नौकर दोनों तरफ़ से मोमबत्ती जलाकर लाता है) अफसोस वे गधे ! डूब मर—

नौकर—एक तरफ तो जलाने की जगह थी, पर दूसरी तरफ न थी : इसी से देर हुई ।

हाकिम—(गला फाड़कर) बुझा एक तरफ से ।

नौकर—आपने ही तो—

हाकिम—अबे आपने ही तो के बच्चे ! बुझाता है कि दूं

हाथ ? (नौकर एक तरफ़ से फूँक मारता है, जिससे मोमबत्ती दोनों तरफ से बुझ जाती है) ज़िमींदार साहब, कसम आपके सर की, ऐसा उल्लू का पट्ठा आज तक नही देखा ।

नौकर—(आप-ही-आप) इसमे क्या शक है, जिमींदार साहब ऐसे ही हैं । (ज़िमींदार साहब सिर हिलाते हैं)

हाकिम—(नौकर से) अच्छा चल रहने दे ; छोड़ उसका पीछा । जा लाख तो ले आ (इशारे से बतलाते हुए) वही उस संदूक मे से । (नौकर जाता है ; हाकिम साहब जेब मे से दियासलाई का बक्स निकालकर मोमबत्ती जलाते और बुड़बुड़ाते जाते हैं) दिल मे आता है कि साले का कचूमर निकाल दूँ । जिमींदार साहब, अगर आपकी तलाश मे कोई अच्छा नौकर हो तो दिलवाइए । कसम हाकिमी की, ऐसे बेहूदे नौकरो को तो कुछ न करे, बस कोल्हू मे पिलवा दे ।

(नौकर एक डले में राख लाया)

नौकर—अब इसमे से जितनी चाहिए, ले लीजिए, फिर आप कहेगे कि यह किया, वह किया ।

हाकिम—(गुस्से मे, कुरसी पर से खड़ा होता हुआ) अबे कमबख़्त, नामाकूल, जानवर ! (जिमींदार हाथ पकड़कर बैठाना चाहता है)

नौकर—जानवर डले मे कैसे आता ?

हाकिम—(बैठता हुआ) लाख मॅगाई थी कि राख ?

नौकर—यह कहिए, अगर लाख ही मॅगानी थी तो आपने

पहले ही साफ-साफ कह दिया होता। (सोचता हुआ) हाँ, तो लाख—हाँ—लाख किसी लखेरे के यहाँ मिल जायगी। जाऊँ, तलाश करूँ ?

हाकिम—(कुरसी पर से उछलकर) तेरे सर मे अक्ल है !

(नौकर पर टूट पड़ते और नौकर के एकाएक अपनी जगह पर से हट जाने के कारण गिर पड़ते हैं)

नौकर—हजूर, काम मै आपका सब कर दूँगा, पर पिटने और धक्के खाने की नौकरी मुझसे न होगी।

हाकिम—(पृथ्वी पर से उठकर नौकर को धक्के देते हुए) निकल ! निकल ! बदमाश ! खबरदार, अंदर कदम बढ़ाया तो। (उसे निकालकर और बैठकर) हाँ जनाब, अब फरमाइए कि क्या तजकिरा था। साले ने—खुदा गारत करे।

नौकर—(लौटकर) बाहर हो आया, अब और कुछ काम बताइए। लेकिन एक बात है, मार-पीटकर मेरे अंजर-पंजर ढीले न कीजिए, हाँ, काम चाहे जितना लीजिए।

हाकिम—हम तुझसे काम नही लेना चाहते; हमने तुझे निकाल दिया। भाग यहाँ से।

नौकर—बात यह है कि मै बहुत दूर तो भाग नहीं सकता, थोड़ी दूर भाग सकता हूँ—यही कोई सौ-पचास गज। कहिए, तो चक्कर मारकर आ जाऊँ। (जिमींदार से) भला कोई जानवर थोड़े ही हूँ, आप भी तो सोचिए सरकार !

हाकिम—(झुँझलाकर) अब तू बक-बक बंद कर। यहाँ से भाग जा और हमको अपना मुँह मत दिखला।

नौकर—बहुत अच्छा, मगर भागने से क्या फायदा? रही अपना मुँह न दिखलाने की, सो (दोनों हाथो से मुँह ढकता हुआ) यह लीजिए, और कुछ काम बतलाइए।

हाकिम—(झुँझलाकर, जिमींदार से) ज़िमींदार साहब, अजीब अहमक है! (नौकर से) कसम हाकिमी की, मारे हंटरो के तेरे टाँके ढीले कर दूँगा, बहुत चबड़-चबड़ लगाई तो।

नौकर—(मुह पर से हाथ हटाकर और अपने कुरते की ओर देखकर) मेरे कुरते के टाँके मेरी राय मे काफी ढीले हैं—लेकिन अगर आप यही चाहते है, तो मै और भी ढीले करा दूँगा। (जिमींदार की ओर देखता हुआ) बात ही क्या है, एक-दो आने पैसे की बात है।

हाकिम—(मारने के लिये हाथ उठाकर) तू भाग यहाँ से।

नौकर—(पीछे हटता हुआ) कहाँ से?

हाकिम—(गला फाड़कर) यहीं से, यहीं से!

नौकर—कहाँ तक?

हाकिम—जहन्नुम तक, जहन्नुम तक!

नौकर—(आप-ही-आप सोचता हुआ) इस मोहल्ले का नाम पहले कभी नहीं सुना था। (हाकिम से) क्या कहा?

हाकिम—काला मुँह कर ! काला मुँह कर !

नौकर—किसका ? किसका ?

हाकिम—(मारने के लिये हाथ उठाता हुआ) नही मानेगा ?

नौकर—किसे मारूँ ?

हाकिम—अपने सर को ।

नौकर—क्यो ?

हाकिम—अब चुप भी होगा या बके ही जायगा ?

नौकर—बहुत अच्छा, जैसा आपका हुकुम—बके ही जाऊँगा ।

हाकिम—(जोर से) चुप रह ।

नौकर—(जोर से) बहुत अच्छा ।

हाकिम—(जिमींदार से) हाँ, तो जिमींदार साहब, इस खत को वैसे ही सादा चलने दीजिए न ? अभी भिजवा दूँ ? जल्दी पहुँच जायगा ।

जिमींदार—जी हाँ, उम्मीद तो है कि ऐसा करने से कोई कहर बरपा नहीं हो जायगा व खत सही सलामत उनके दर पर हाजिर हो जायगा ।

हाकिम—(नौकर से) अच्छा बे बखनावर, ले खत तो डाल आ, कहाँ डालेगा ?

(नौकर चुप है)

हाकिम—अबे बोलता क्यो नहीं ? क्या गूँगा हो गया ?

(नौकर चुप है)

हाकिम—(नौकर के हाथ में झटका देकर) ले जल्दी से; इसे बंबे में झटपट डाल आ ।

नौकर—आपने चुप रहने को कहा था, इसीलिये चुप था । लाइए, डाल आऊँ ।

हाकिम—(चिट्ठी देता हुआ) कौन-से बंबे मे ?

नौकर—(चिट्ठी झपटकर भागता हुआ) हाँ, बहुत जल्दी डाल दूँगा—इसी नहर के बंबे मे ।

हाकिम—अबे डाकखाने—

नौकर—(भागता हुआ) हाँ-हाँ, मैं समझ गया । अपने सामने ही पानी में बहा दूँगा । बंबा बड़े जोर से जाता है ।

(गया)

हाकिम—अबे ठहर, ठहर, बेवकूफ ! चला गया नालायक । (जिमींदार की तरफ) ज़िमींदार साहब, नौकर बेवकूफ है; कहीं सचमुच नहर के ही बंबे में न डाल दे । जाइए, जरा आप ही तकलीफ कीजिए, वरना फिर—

जिमींदार—बहुत अच्छा । (गया)

हाकिम—कैसा कंबख़्त नौकर मिला ! मैं भी अब भीतर से दरवाज़ा बंद किए लेता हूँ, बदमाश को घुसने भी न दूँगा ।

(किवाड़ बंद करता है)

(दूसरा दृश्य)

स्थान—कमरा

(इधर-उधर देखते हुए नौकर का प्रवेश)

नौकर—सच बात तो यह है कि कलट्टर, डिप्टी कलट्टर, टिकट कलट्टर, इसपेक्टर, मास्टर, ऐडीटर वगैरह बीसियों टरों के यहाँ मैने नौकरी की, पर जो बढ़िया गालियाँ यहाँ खाने को मिली वे और जगह नही। जरा घर मे घुसा कि दोनो-की-दोनो, बिल्लियों की तरह, मेरे ऊपर टूटी! जरा बाहर आया कि बुड्ढे खूसट ने खाया! बेतरह हैरान हूँ। वाह री नौकरी! तू भी कैसे-कैसे तमाशे दिखाती है! लीजिए, अभी हाल-ही-हाल में, न कुछ बात थी न चीत, दोनो-की-दोनो मेरे ऊपर झाड़ू लेकर टूट पड़ी और झटकम्-पेली करके मेरा कुरता फाड़ डाला और मुझे नोचा-खसोटा और बकोटा भी! अरे भाई, मैंने पूछा कि कोलतार की हँडिया कहाँ रक्खूँ? वह बोलीं कि मेरे सिर पर! मै भोलाभाला आदमी ठहरा, उनके हुकुम के मुताबिक उनके सिर पर रख दी। वह फैलकर फूट गई, तो मै क्या करूँ? फूट क्यो न जाती, थी तो मिट्टी की ही न! पहले ही सोच-समझकर हुकुम क्यो नहीं फरमाया? और, छोटी बीबी बोलीं कि नहाने के लिये पानी ले आ। मैने घड़ा-भर पानी लाकर ऊपर उड़ेल दिया। भला जाड़े के दिन और ठंडा पानी! तो मुझसे पहले ही क्यो न

कहा कि गरम पानी लाकर रख दे? अगर मै लिए खड़ा रहता तो बेवकूफ समझा जाता, और शायद मुझसे यों कहा जाता कि अबे गँवार, दाढ़ीजार, लिए क्यों खड़ा है? नहलाता क्यों नहीं? क्या इतनी भी अक़ल नहीं रखता, हरामखोर? अच्छा, लेकिन जब अकलमंदी के साथ पानी मैने ऊपर डाल दिया, तब दोनों-की-दोनो मेरे ऊपर टूट पड़ी। टूट तो पड़ी, पर मैंने भी एक को (इशारे से बतलाता हुआ) कलाजंग और दूसरी को (इशारे से बतलाता हुआ) धोबीपाट की बदौलत ऐसा फेंक दिया कि अगर होता कहीं दंगल तो बारह रुपए से कम इनाम न मिलता—चौथाई काटकर—हाँ। अब (इधर-उधर देखता हुआ) दोनो-की-दोनों घर-भर मे मुझे ढूँढती फिर रही है। क्या मेरा कचूमर निकालेंगी? (एक ओर से आवाज आती है—'अरे मुए, तेरा काला मुँह हो') यह बी कलमुही बोली। यह पहली घंटी बजी। (दूसरी ओर से—'अरे ढेढ, तुझे कोई पानी पिलानेवाला भी न रहे') खूब! नहलानेवाले को अच्छा इनाम दिया! भला सोचने की बात है कि जो घड़ा-भरे ठंडे पानी से नहलावे वह आप पानी तक न पावे! यह दूसरी घंटी हुई। मगर (इधर-उधर देखता हुआ) घिर गया क्या? (फिर इधर-उधर देखकर) एक इधर से और एक उधर से! अब भागूँ किधर से?

(घबड़ाकर इधर-उधर देखता है)

(एक ओर से बड़ी बीवी कोलतार से काला मुँह किए और हाथ में बाँस का टटोंगा लिए आती हैं)

बड़ी बी—अरे मुए ढेढ़, (एक टटोंगा मारकर) तूने मुझे गिराया कैसे ?

(दूसरी ओर से छोटी बीवी नहाई हुई और हाथ में उलटी झाड़ू लिए आती हैं)

नौकर—(छोटी की तरफ) काट खा !

छोटी—(झाड़ू मारकर) क्यों रे बेईमान, तू औरतो पर हाथ उठाता है ! बेशरम ! कैसा मरदुआ है ?

नौकर—परवरदिगार जाने तुम कैसी मरदुई हो, जो बिना बात के मुझसे झगड़ती हो, और खामखाँ मुझ पर टूटी पड़ती हो। बस मैंने कह दिया है, अलग से बात करो।

बड़ी बी—(टटोंगा मारकर) अरे मुए ढेढ़—

नौकर—वाह, क्या सींग दिखाकर नाचती हो !

छोटी बी—(झाड़ू मारकर) सब करेंग अलग से बात !

बड़ी बी—निकल हमारे यहाँ से, कलमुहे !

नौकर—(बड़ी से) वाह, क्या गोरा चेहरा लिए फिरती हो ! जरा शीशे में तो देखो।

छोटी—(झाड़ू मारकर) अरे मरदूद, तू ही जो चेहरा देख, दाढ़ीजार।

नौकर—यह बात दूसरी है।

वड़ी वी—(टटोंगा मारकर) हम तुझे जहन्नुमरसीद करा देंगे।

नौकर—भला !

छोटी—मरै तू। (दोनों पकड़कर पीटने लगती हैं)

नौकर—(गला फाड़कर) अरे दौड़ो ! दौड़ो !

वड़ी वी—(पीटती हुई) और चिल्ला।

नौकर—अरे दौड़ो ! दौड़ो ! भरती करो इन्हे रँग-रूटो मे।

(हाकिम साहब का प्रवेश)

हाकिम—यह क्या ऊधम है ?

नौकर—अजी देखिए, मुझ गरीब को धुने डालती है।

वड़ी वी—ऑ हॉ, धुने डालती है—तुझ गरीव को।

छोटी वी—देखो तो जरा इसकी करतूत।

(मौका देखकर नौकर खिसक जाता है)

वड़ी—हम अपनेआप काम कर लेगे, हम बाज़ आए ऐसे नौकर से।

हाकिम—(क्रोध से) अच्छा वस, वहुत हुआ; (मूछों पर ताव देता हुआ) ज़रा लाओ तो मेरी तलवार। मैं अभी साले की गर्दन काटता हूँ।

(हाकिम साहब का एक ओर दौड़ना; बीबियों का पीछे-पीछे दौड़ना)

(तीसरा दृश्य)

स्थान—अँधेरी कचहरी

(मौलवी खुशामदअलीखाँ और लाला ढोलकराम नाम के दो न्यायी बैठे हैं। मुक़दमा पेश है। हाकिम साहब की तरफ से मुंशी नजीरअहमक़ साहब मुख़्तार और नौकर की तरफ से मुंशी कचहरीसहाय सकसेना 'लीडर' पैरवी कर रहे हैं। कितने ही आदमी तमाशा देख रहे हैं)

हाकिम—(नौकर की ओर इशारा करता हुआ) यह साला नालायक है, काठ का उल्लू है।

कचहरीसहाय—जनाब, जरा जुबान सँभालकर बोलिए; यह अदालत है, गाँव की चौपाल नहीं है। (खुशामदअलीखाँ की तरफ देखता हुआ) ऐसे बाजारू अलफाज कहने से अदालत की हतक होती है।

खुशामद०—(हाकिम की तरफ) मुंशीजी ने दुरुस्त फ़रमाया : यह सरकारी अदालत है, यहाँ अपनी जुबान पर लगाम रखने की चंदाँ जरूरत है।

लाला ढोलक०—ठीक है, यहाँ बदमासी नहीं चलेगी, हम पुलिस को सुपरद कर देंगे।

नजीर०—मैं अपने मवक्किल की तरफ से मुआफी के लिये दस्तबस्ता अर्ज करता हूँ।

लाला ढोलक०—अच्छा-अच्छा, तो हमने माफ किया; चलो आगे बढ़ो।

खुशामद०—(नौकर से) हाँ रे, तो तू क्या कहता है ?

नौकर—मुझे बेफायदे चोरी लगाकर निकाले देते हैं। मैं चोर नहीं हूँ, मेरे चाल-चलन के बारे मे तहकीकात करा ली जाय।

हाकिम—(क्रोध से)यह अव्वल दर्जे का हाथ-चालाक है।

कचहरी०—क्या आप इस बात को साबित कर सकते है ?

नजीर०—(कचहरीसहाय से) तो यह बात तो मुलजिम के बयानों से भी साफ जाहिर है कि उसने चोरी की, याने कोई चीज उठाई—

कचहरी०—(बात काटकर, मुसकराते हुए) जब कि नौकर का काम ही चीजो को उठाने-धरने का है। यह कहाँ साबित हुआ कि चुराई ? चीज एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रख दी—बस !

नजीर०—(किताब खोलता हुआ) देखिए इलाहाबाद-रिपोर्ट १६३।

कचहरी०—(किताब खोलता हुआ) देखिए बम्बई-रिपोर्ट २६७।

नजीर०—देखिए पंजाब-रिपोर्ट २१२।

कचहरी०—देखिए कलकत्ता २१३।

नजीर०—(कुछ गरम होकर) देखिए मदरास २६४।

कचहरी०—(नजीरअहमक को गरम होता देखकर खुद भी गरम कर) देखिए जहन्नम ३६५ !

नज़ीर०—(क्रोध से) हूँ:—

कचहरी०—(क्रोध से) हूँ:—

नज़ीर०—(कचहरीसहाय से) म्याँ कुछ पढ़कर भी आए हो, या यो ही निकले पड़ते हो पाजामे में से ?

कचहरी०—(नजीरअहमक़ से) चले आए साहब चवन्नी पर !

नज़ीर०—चोरो की हिमायत लेकर !

कचहरी०—नहीं तो, बेचारे ग़रीब का गला कटवा दो !

खुशामद०—अरे तो भड़ुओ, आपस मे क्यो लड़ो हो ?

लाला ढोलक०—ठीक कही, ठीक कही ।

कचहरी०—(खुशामदअलीखाँ के हाथ में रुक्का देता हुआ और हाकिम की ओर इशारा करता हुआ) जरा इनसे पूछिए तो कि यह रुक़ा इन्हीं के हाथ का है या नहीं ।

नौकर—हाँ-हाँ, (हाकिम की तरफ) अब कहिए ।

हाकिम—नहीं, हरगिज नहीं ; जाली है, बनावटी है ।

नौकर—(अदालत से) झूठ बोलते हैं ।

नज़ीर०—(नौकर की ओर आँखे निकालते हुए) बिलकुल जाली है, मसनूई है ।

कचहरी०—(गरम होकर, नजीरअहमक से) झूठा है—

नज़ीर०—तू झूठा—

कचहरी०—तेरा बाप झूठा !

खुशामद०—चुप रहिए आप लोग । कलट्टर साहब सुन

लेंगे तो हम पर नाराज़ होंगे, आपका क्या बिगड़ेगा ? अपनी नहीं तो हमारी इज़्ज़त का तो खयाल कीजिए। आपको शायद यह मालूम नहीं है कि मुझको जल्द ही खानबहादुरी—

लाला ढोलक०—(खुशामदअली से) और मुझे नहीं ? मुझे भी तो—(खुशामदअली के कान में कुछ कहता है)

खुशामद०—हूँ-हूँ। (गरदन हिलाता है)

लाला ढोलक०—बस, हमने कह दिया, ऐसा ही है तो आपस में फैसला कर लो; ऊधम मत करो।

नज़ीर०—(कचहरीसहाय से) मुंशीजी, होश में रहिए।

कचहरी०—आप रहिए होश मे।

नज़ीर०—सीधा कर दूँगा, किसी के धोखे मे न रहना, मै पठान हूँ।

कचहरी०—ज़ुबान सँभालकर बोल। याद रखियो, कायथ-खोपड़ी से अटककर पछतायगा।

नज़ीर०—बेवकूफ !

कचहरी०—गधा !

नज़ीर०—अबे तूने समझ क्या रक्खा है !

(मुख़्तार और 'लीडर' आपस मे किताबों से लड़ते हैं; देखनेवाले गुल-गपाड़ा मचाते हैं)

खुशामद०—अच्छा-अच्छा, सुनो-सुनो।

लाला ढोलक०—चलो बस बहुत हो चुकी ।

(पेशकार वग़ैरह बीच-बचाव कराते हैं)

खुशामद०—हमने मुकदमा ख़ारिज किया ।

लाला ढोलक०—भौट्ठीक! भौट्ठीक ! चलो, हो गया जो कुछ होना था ; भागो यहाँ से, ख़ाली करो अदालत ।

खुशामद०—और नौकर अपनी तनख़्वाह का दावा और कहीं करे ।

ढोलक०—हम लोग गवाही देंगे ।

(लोग हल्ला-गुल्ला मचाते हैं । नौकर कचहरीसहाय से और हाकिम नज़ीरअहमक़ से बातचीत करता है । नज़ीरअहमक़ हाकिम के कान में कहता है कि अदालत के हाथ जोड़कर रो दो तो नौकर को सज़ा हो सकती है, वरना वह दीवानी में नालिश करेगा । हाकिम के रोने से इंकार करने पर नज़ीरअहमक़ अफ़सोस के साथ अपनी किताब फ़र्श पर फेंक देता है और ताने के साथ कहता है कि 'चलो जाओ रहने भी दो, ज़रा-सी ऐंठ में जीता-जिताया मुक़द्दमा हारे जाते हो। अदालत के हाथ जोड़ने में बिगड़ता ही क्या है ?" आख़िर हाकिम ऐसा करने के लिये राज़ी हो जाता है)

हाकिम—(अदालत के हाथ जोड़कर झूठ-मूठ रोता हुआ) मैं भी पुराना हाकिम हूँ । रिशवत के सबब से मेरी जगह कमी में गई थी । ज़रा मेरी हालत पर तरस खाइए । आज मुझ पर है तो कल आप पर भी आफ़त आ सकती है । आज

मेरी यह हालत है तो क्या हुआ, कुछ दिनों में फिर मै अपनी पुरानी इज़्ज़त हासिल कर सकता हूँ। मेरी बात जाती है। अगर मै हार गया तो नौकर लोग मालिको के सिर पर चढ जायँगे और उन्हें चींथ डालेंगे। ज़रा सोचिए।

लाला ढोलक०—(खुशामदअली के कान मे) है तो बात ठीक।

खुशामद०—(लाला के कान में) हॉ, नौकर हरामज़ादे बड़े सिर पर चढ़ते जाते हैं।

हाकिम—(अदालत से) आज को मेरे नौकर ने मुझे अदालत में घसीटकर मेरी इज़्ज़त को धूल मे मिलाया है, कल को आपके नौकर भी आपको इसी तरह तंग करेंगे। (नजीरअहमक हाकिम की पीठ ठोकता है कि बहुत अच्छा कहा)

खुशामद०—हॉ ठीक है, अब हमारी समझ में आया कि मामला कुछ और ही है।

लाला ढोलक०—जे बात, जे बात।

खुशामद०—अच्छा, तो जैसी एक चीज़ की चोरी वैसी हज़ारो चीज़ों की चोरी, और जैसी एक रुपए की चोरी वैसी हज़ार रुपए की चोरी। अब देखते हैं कि नौकरों में चोरी करने की आदत दिन-पर-दिन बढती जाती है।

कचहरी०—लेकिन हुज़ूर, मेरे मवक्किल के ख़िलाफ—

नजीर०—(बीच ही में) अदालत का फरमाना बिलकुल

लाला ढोलक०—चलो बस बहुत हो चुकी।

(पेशकार वगैरह बीच-बचाव कराते हैं)

खुशामद०—हमने मुकदमा खारिज किया।

लाला ढोलक०—भौंट्टीक! भौंट्टीक! चलो, हो गया जो कुछ होना था; भागो यहाँ से, खाली करो अदालत।

खुशामद०—और नौकर अपनी तनख़्वाह का दावा और कहीं करे।

ढोलक०—हम लोग गवाही देंगे।

(लोग हल्ला-गुल्ला मचाते हैं। नौकर कचहरीसहाय से और हाकिम नज़ीरअहमक से बातचीत करता है। नज़ीरअहमक हाकिम के कान में कहता है कि अदालत के हाथ जोड़कर रो दो तो नौकर को सज़ा हो सकती है, वरना वह दीवानी में नालिश करेगा। हाकिम के रोने से इकार करने पर नज़ीरअहमक अफ़सोस के साथ अपनी किताब फ़र्श पर फेंक देता है और ताने के साथ कहता है कि 'चलो जाओ रहने भी दो, ज़रा-सी ऐंठ मे जीता-जिताया मुक़दमा हारे जाते हो। अदालत के हाथ जोड़ने मे बिगड़ता ही क्या है?' आखिर हाकिम ऐसा करने के लिये राज़ी हो जाता है)

हाकिम—(अदालत के हाथ जोड़कर झूठ-मूठ रोता हुआ) मैं भी पुराना हाकिम हूँ। रिशवत के सबब से मेरी जगह कमी में गई थी। ज़रा मेरी हालत पर तरस खाइए। आज मुझ पर है तो कल आप पर भी आफ़त आ सकती है। आज

मेरी यह हालत है तो क्या हुआ, कुछ दिनों में फिर मैं अपनी पुरानी इज़्ज़त हासिल कर सकता हूँ। मेरी बात जाती है। अगर मैं हार गया तो नौकर लोग मालिकों के सिर पर चढ जायँगे और उन्हें चींथ डालेंगे। ज़रा सोचिए।

लाला ढोलक०—(खुशामदअली के कान में) है तो बात ठीक।

खुशामद०—(लाला के कान में) हाँ, नौकर हरामज़ादे बड़े सिर पर चढ़ते जाते हैं।

हाकिम—(अदालत से) आज को मेरे नौकर ने मुझे अदालत में घसीटकर मेरी इज़्ज़त को धूल में मिलाया है, कल को आपके नौकर भी आपको इसी तरह तंग करेंगे। (नजीरअहमक़ हाकिम की पीठ ठोकता है कि बहुत अच्छा कहा)

खुशामद०—हाँ ठीक है, अब हमारी समझ में आया कि मामला कुछ और ही है।

लाला ढोलक०—जे बात, जे बात।

खुशामद०—अच्छा, तो जैसी एक चीज़ की चोरी वैसी हज़ारों चीज़ों की चोरी, और जैसी एक रुपए की चोरी वैसी हज़ार रुपए की चोरी। अब देखते हैं कि नौकरों में चोरी करने की आदत दिन-पर-दिन बढती जाती है।

कचहरी०—लेकिन हुज़ूर, मेरे मवक्किल के खिलाफ—

नजीर०—(बीच ही में) अदालत का फरमाना बिलकुल

दुरुस्त है, इन कंबख़्तों का जल्द इलाज होना चाहिए।

खुशामद०—इसलिये हमने नौकर को बीस साल के काले पानी और एक लाख रुपए जुर्माने की सजा दी।

लाला ढोलक०—मजे का डौल है, मजे का डौल है।

पेशकार—(धीरे से खुशामदअली के कान में) मगर कानूनन् हुजूर इतनी सजा दे कैसे सकते हैं ?

खुशामद०—मर गया साला कानून-वानून। (पेशकार को नौकर का वकील समझकर) तुम अपील कर दो, बहुत करो तो। सब देख लिया जायगा। हुँः, मैंने लड़ाई में इतने रँगरूट दिए थे और रुपए इकट्ठे किए थे, और ख़िलाफत और तर्के मवालात की मुखालिफत मे उन दिनो गालियाँ और चपतें तक खाई था सो तो कुछ नहीं, अब आज तुम मेरे ही फैसले पर कानून छाँटने चले हो। (पेशकार को पहचानकर) पेशकार साहब, और कोई कहे तो कहे, आप भी ऐसी बातें कहते है ! मालूम होता है, दूसरी तरफ़ से आपने कुछ अपनी मुट्ठी गरम कर ली है।

लाला ढोलक०—(पेशकार से) और कलक्टर साब ने हमसे जे जो कह दीनी है के तुम चाहैं जित्ती सज़ा दे दिया करो, अपील म हम किसी की नहीं सुनेंगे, सो ? (कचहरीसहाय से) बस चलो, हटो, रस्ता नापो, कर लो जो कुछ तुम पै किया जाय सो।

कचहरी०—(नौकर के कान में) अबे देखता क्या है, जल्दी से लालाजी के पैरो पर गिर पड़ । (नौकर कचहरी-सहाय की ओर देखता है) अबे गिर ! अबे गिर !

(नौकर लालाजी के पैरों पर गिरता और रोता है)

नौकर—(चिल्लाकर रोता हुआ) हजूर मै मर जाऊँगा, मेरे वाल-बच्चे—(रोता ह)

कचहरी०—(अदालत से) इसमें शक नहीं कि मेरे मव-क्किल के साथ बड़ी बेइंसाफ़ी हो रही है ।

नौकर—दया धरम कौ मूल है, पाप-मूल अभिमान ;
तुलसी दया न छाँड़िए, जब लगि घट में प्रान ।

लाला ढोलक०—(कचहरीसहाय से) जे बात है तो तुम एक काम करो, इसको कलट्टर साब के पास ले जाओ । विनकी मौज होगी तौ सजा घटा देंगे, सायद बिलकुल ही माफ कर दें, भौ काम फते हो जायगा। (खुशामदअली से) क्यों खॉसाव ? (दर्शक लोग गुलगपाड़ा मचाते हैं, परदा गिरता है)

आयुर्वेद-कसेरू वैद्य वैंगनदासजी कविराज

(आयुर्वेद-कसेरू वैद्य वैंगनदासजी ने अभी हाल में अपनी बैठक-रूपी दूकान खोली है। रोगियों की प्रतीक्षा में बैठे हुए आप घटा हिला-हिलाकर एक गीत गुनगुना रहे हैं)

वैद्यजी— (गाना)

धन-धन तिर्फलाजी महराज, हमको वैद बनानेवाले ।
पहले बेचा कचौड़ा-जलेबा,
यों कीनी पब्लिक की सेवा,
पीछे पड़ गए उधार के देवा—
तराजू-बाँट छिनानेवाले—धन-धन तिर्फलाजी० ॥ १ ॥
मैंने कितने ही काम चलाए,
पर क्या कहूँ—सबमे गोते खाए,
उधार लेके रुपए डुबाए—
ऐसे थे हम भोले-भाले—धन-धन तिर्फलाजी० ॥ २ ॥
हैं अब सबकी जान बचाते,
मुरदों तक को हैं चेताते,

जिसे जो चहिए सो दिलवाते—

हम 'कफराज' कहानेवाले—धन-धन तिर्फलाजी० ॥ २ ॥

देखो तो ! भला ऐसी पोल और कहाँ मिलेगी ? जब हमारो कोई भी काम नहीं चला, तब हमने दुनिया मे सबसे हलके काम का बोझ अपने सिर पर ले लिया । यानी ? यानी लोगों की जान बचाने का । और ? और बस न पूछिए; ह: ह: ह: ह: (हँसता है) । अब मै वह पुराना बाँगड़ू नहीं रहा जो 'घर का जोगी जोगना' बनके दुनिया-भर के धप्प खाता था; यहाँ आकर मै 'आन गाम का सिद्ध' हो गया हूँ । इधर वैदों की सभा ने मुझे 'आयुर्वेद-कसेरू' बना दिया है, जिसका मतलब है कि आयु का देनेवाला कसेरू; ऊपर से काला, पर भीतर से सफेद, ठंडा और गुनवाला । सो ऐसा मैं हूँ; क्योंकि जान बचाता हूँ । जो मान भी ले कि हमारे बचाए आज तक किसी की जान नहीं बची, तो भी क्या हुआ ! भला यह कौन नहीं जानता कि चलते-चलाते अंत में मौत ही जीवन का प्रनाम है, या परिमान है—क्या कहते हैं उसे ? ऐसा ही कुछ कहते है । दूसरे वैद नाड़ी देखके रोग बताते हैं, हम सूरत देखके ही वो रोग तो बता ही देते हैं, उसे छोड़के और भी कितने ही रोग जो पहले कभी हो चुके हों या आगे कभी होनेवाले हो बता देते है । (नौकर का प्रवेश)

नौकर—(हाथ जोड़ता हुआ) म्हाराज, ऐसे काम नहीं

चलेगा। मेरी तनखा नहीं मिली है, आज दस दिन हो गए। अब मुझसे भूखों मरकै आपकी सेवा नहीं करी जाय है। मेरी तनखा दे दो और दूसरा आदमी तजवीज करो।

वैद्य—अबे सिड़ी, तू दस दिन की तनखा को रोवै है, हम तुझे दस हजार रुपए का एक हो नुसखा बताए दें हैं। ले सुन—

हड़्ड़, बहेड़ा, आमला, घी-शक्कर में खाय ;
हाथी दाबै काँख में, साठ कोस ले जाय।

जा, भाग जा। इसी की बदौलत हजारों रुपए कमा खा। बहुत-से वैद इतना भी नहीं जाने हैं।

नौकर— म्हाराज, मै नुसखा-उसखा कुछ नहीं जानूँ हूँ, मेरे दाम दिला दो और मुझे विदा करो।

वैद्य—अरे मूर्ख, हजार रुपए की चीज तुझे बताई, फिर भी तेरी समझ में न आई। तेरी किस्मत, हम क्या करें? कोई किसी के करमों का साथी थोड़ही है।

नौकर—सो म्हाराज, किसी और को समझाना। तीन दिन से अन्न का एक दाना भी पेट में नही पड़ा है। सीधी तरह से मेरे पैसे दे दो, नही तो आज यहीं बैठा-बैठा खूब चिल्ला-चिल्लाकर रोऊँगा और रस्ते-चलते आदमियो को इकट्ठा करूँगा।

वैद्य—(बीच ही में) अरे हैं! क्या सगुन बिगाड़ेगा सवेरे-

ही सबेरे। अबे, अभी तो तेरे आगे दुकान खोलते जाते है। अभी कोई आया न गया, तुझे पैसे कहाँ से दे दे। जो रुपए थे सब आमला-पाक मे लग गए। किसी उल्लू को फँसने भी तो दे। तब तक तू एक काम कर; जा, सब लोगो से कहता फिर कि वैदजी स्रीआयुर्देव-कसेरू कफराज वैंगनदासजी ने एक ऐसा अच्छा आमला-पाक बनाया है कि जिसके खाने से बुड्ढे भी जवान हो जाते है। जवान नहीं तो अधेड़ तो हो ही जायँगे। जा, दो-चार उल्लुओ को फँसाके ला। तेरे भी पैसे दे देगे।

नौकर—अच्छा। (जाता-जाता रुककर) तो आज मुझे जरूर—

वैद्य—(बीच ही में) अबे आँ हाँ जरूर जरूर : जरूर ले जरूर; जरूर लेगा कि जान लेगा किसी की?

नौकर—तो बस ठीक है। (गया)

वैद्य—(झाँककर) गया कंबखत। क्या कहे, अच्छे नौकर तो अब कही मिलें ही नहीं है। पहले जब हम नौकरी करते थे तो कैसे दौड़-दौड़कर हुक्का भरते थे! पान लगवा लाते थे! अब इस कमचोर को देखो, तो जब देखो तब अपनी तनखा को तो रोवेगा और यह इससे नहीं होगा कि जरा दौड़-धूप करके दुबले-पतले नाताकतो को बहकाके लावे जिससे यह पाक बिकै जो कि धरा-धरा सड़ा जाय है,

और जिसमे दीमक लगी जाय है । न-जाने कहाँ मर गए कम-ताकतीवाले ! दुष्टों के लिये इतनी अच्छी दवा बनाई है, फिर भी लेने नहीं आते ! अच्छा, तुम्हारी ऐसी-तैसी, भडुओ, मत आओ; मै भी अब हरएक रोग मे इसे ही चलाऊँगा । (एक ओर देखकर गभीरता के साथ बैठता है; एक रोगी का प्रवेश)

रोगी—जै महाराज; राम राम साब; पालागन ।

(कुछ जवाब न देकर बड़ी गंभीरता से वैद्यजी उसकी ओर देखकर सिर हिला देते हैं)

रोगी—सिरीमान, दमे के मारे बड़ा नाक मे दम है । रात-भर चैन नहीं पड़ता । पंद्रह दिन डाक्टर हैटराम का इलाज किया, फिर पद्रह दिन हकीम बूदमबेदालखॉ के इलाज मे रहा; पर किसी के भी इलाज से कुछ उन्नीस-बीस का फरक् नहीं दीखा ।

वैद्य—लोग कहते है कि दमा दम के साथ जाता है, पर (गभीरता के साथ ऊपर देखकर) हे परमात्मा, तेरा धन्यवाद है जो तू ऐसे-ऐसे रोगी मेरे पास भेजे है कि जसी नदियॉं समुंदर मे जा मिलती और शाती प्रापत् करती है । (रोगी से) मैने आप ही लोगो के वास्ते अभी एक पाक ऐसा तैयार करा है कि जो तुम्हारे रोग की—बस और तो क्या कहूँ—जान है । दमा तो दमा, दम तक उससे निकल जाय । तुमने पहले

कभी आमले का नाम सुना होगा। बस यह पाक उसी से तैयार किया गया है। पुराने जमाने मे इसे खाकर चमन रिसी बुड्ढे से जवान हो गए थे और उन्हे नया व्याह करना पड़ा था। इसीलिये इसे चमन-पाक या चमन-फाँस भी कहते हैं। उनको पहले दमा हुआ, फिर बुखार भी रहने लगा, जब सब हकीमी, वैदकी, डाक्टरी इलाजों से तंग आकै उन्होने यह पाक खाया, तब भला फिर क्या पूछना है! तुम जानते ही हो। यह वह चीज है जो सब रोगों पै एक-सी चले है।

रोगी—अजी महाराज, (हाथ जोड़कर) तो जल्दी मुझे 'एक पंथ, दो काज' करने दीजिए, क्योंकि मेरी घरवाली भी बीमार रहती है। न-जाने किस दिन घर सूना कर जाय, यही सोचकर मैंने अभी से दूसरी जगह बातचीत सुरू कर दी है।

वैद्य—(हसकर और सँभलकर बैठता हुआ) अजी इसी की बदौलत—बस अब क्या पूछो हो! जीते रहें वे रिसी लोग जिन्होने यह बनाया। इसकी तारीफ जरा बी लक्कड़भग्गी-जान और बी चपातीजान से पूछो। उनके भी सब रोग दूर हो चुके हैं। यह इस्त्रियो पर भी वैसा ही चलै है जैसा पुरषों पर।

रोगी—अजी तो बस—

वैद्य—(बीच ही में) मौट्टीक, मौट्टीक, बस तुम दो सेर खालो, फिर—और तो क्या कहूँ—तुम अपने आप ही कहने लगोगे। बस चार ही रुपए पड़ेंगे। ढाका-शक्की से लोगे तो छै देने पड़ेंगे। वैसे मैं भी छै से कम मे नहीं दूँ हूँ, पर तुम्हारे लिये दो रुपए कम कर दिए ह।

रोगी—बहुत अच्छा महाराज! (रुपए निकालता है। वैद्यजी पाक तोलकर देते हैं। रोगी जाता है। वैद्यजी रुपयों को अपने माथे से लगाकर, तराजू की डंडी से दो-तीन बार छुआकर, हाथ जोड़कर जेब में रख लेते हैं। दूसरा रोगी आता है)

दूसरा रोगी—वैदजी, अँगड़ाई लेते मे मेरी बाईं ओर छाती में बड़ा दर्द हुआ करे है। कोई ऐसी दवा दीजिए कि जो मल दीनी जाय और जिससे दर्द कम हो जाय—

वैद्य—आहा! सो ही तो तुम्हे अभी मालुम नहीं। अरे, वही पाक तुम्हारे रोग की भी जड़ हरेगा वही! उसे अलसी या तारपीन के तेल मे थोड़ा मिलाकर, गरम करके, लेप करो; ऊपर से अंडौवे का पत्ता बाँधकर सेको। फिर अगर दर्द का नाम भी रह जाय तो कहना।

रोगी—(अचरज से) महाराज! क्या कहा आपने? पाक! खाने की दवा की मालिश और ऊपर से सेक!

वैद्य—अरे, यही तो बात है। तिल की ओट पहाड़ है। तुम अभी जानो क्या? उस दवा म 'बात-गज-अंकुस' पड़ा

है, जिससे—अँगड़ाई लेना तो क्या—'वात' करने तक मे अगर 'गज'-भर लंबा भी दर्द हो तो 'अंकुस' हो जाय! यानी मारे अंकुस के भागता फिरे। तो, ले लो पाव-भर। (तोलने लगता है) निकालो अठन्नी।

रोगी—बहुत अच्छा महाराज! (पाक लेकर और अठन्नी देकर गया। एक मनुष्य आया)

मनुष्य—महाराज, कानपुर मे मेरी लड़की व्याही है।

वैद्य—(बीच ही में) आमला-पाक से शर्तिया ठीक हो जायगी, शर्तिया।

मनुष्य—(सुनी-अनसुनी करके) उसे कहते हैं कि तपे-दिक़ हो गई है।

वैद्य—हाँ-हाँ, ठीक है। हम समझ गए। ससुराल मे रोटियाँ सेकनी पड़ती होंगी। चूल्हे के सामने अधिक तपने से जी दिक़ हो जाता है। बस उसी को तपेदिक कहते है। आमला-पाक ठंडा होने के कारन उसकी एक ही दवा है। फौरन ही गर्मी को सर्दी मे बदल देता है, बस बुखार का नाम नहीं रहता। गाल लाल हो जाते हैं और आदमी मशक हो जाता है। पर पॉच सेर खाना पड़ेगा। (मनुष्य की ओर ध्यान से देखता हुआ) खैर, अभी थोड़ा ही सही—

मनुष्य—अभी तक डाक्टरी—

वैद्य—(बात काटकर) डाक्टरी-आक्टरी एक न चलेगी;

वैद्य—(बीच ही में) भौट्टीक़, भौट्टीक; बस तुम दो सेर खालो, फिर—और तो क्या कहूँ—तुम अपने आप ही कहने लगोगे। बस चार ही रुपए पड़ेंगे। ढाक्का-शक्ती से लोगे तो छै देने पड़ेंगे। वैसे मै भी छै से कम मे नहीं दूँ हूँ, पर तुम्हारे लिये दो रुपए कम कर दिए ह।

रोगी—बहुत अच्छा महाराज ! (रुपए निकालता है। वैद्यजी पाक तोलकर देते हैं। रोगी जाता है। वैद्यजी रुपयो को अपने माथे से लगाकर, तराजू की डंडी से दो-तीन बार छुलाकर, हाथ जोड़कर जेब में रख लेते हैं। दूसरा रोगी आता है)

दूसरा रोगी—वैदजी, अँगड़ाई लेते मे मेरी वाईं ओर छाती में बड़ा दर्द हुआ करे है। कोई ऐसी दवा दीजिए कि जो मल दीनी जाय और जिससे दर्द कम हो जाय—

वैद्य—आहा ! सो ही तो तुम्हे अभी मालुम नही। अरे, वही पाक तुम्हारे रोग की भी जड़ हरेगा वही ! उसे अलसी या तारपीन के तेल मे थोड़ा मिलाकर, गरम करके, लेप करो; ऊपर से अंडौवे का पत्ता बाँधकर सेको। फिर अगर दर्द का नाम भी रह जाय तो कहना।

रोगी—(अचरज से) महाराज ! क्या कहा आपने ? पाक ! खाने की दवा की मालिश और ऊपर से सेक !

वैद्य—अरे, यही तो बात है। तिल की ओट पहाड़ है। तुम अभी जानो क्या ? उस दवा म 'वात-गज-अंकुस' पड़ा

है, जिससे—अँगड़ाई लेना तो क्या—'वात' करने तक मे अगर 'गज'-भर लंबा भी दर्द हो तो 'अंकुस' हो जाय! यानी मारे अंकुस के भागता फिरे। तो, ले लो पाव-भर। (तोलने लगता है) निकालो अठन्नी।

रोगी—बहुत अच्छा महाराज! (पाक लेकर और अठन्नी देकर गया। एक मनुष्य आया)

मनुष्य—महाराज, कानपुर मे मेरी लड़की व्याही है।

वैद्य—(बीच ही मे) आमला-पाक से शर्तिया ठीक हो जायगी, शर्तिया।

मनुष्य—(सुनी-अनसुनी करके) उसे कहते हैं कि तपै-दिक हो गई है।

वैद्य—हॉ-हॉ, ठीक है। हम समझ गए। ससुराल मे रोटियॉ सेकनी पड़ती होंगी। चूल्हे के सामने अधिक तपने से जी दिक्क हो जाता है। वस उसी को तपैदिक कहते है। आमला-पाक ठंडा होने के कारन उसकी एक ही दवा है। फौरन ही गर्मी को सर्दी मे वदल देता है, वस बुखार का नाम नहीं रहता। गाल लाल हो जाते हैं और आदमी मशक हो जाता है। पर पॉच सेर खाना पड़ेगा। (मनुष्य की ओर ध्यान से देखता हुआ) खैर, अभी थोड़ा ही सही—

मनुष्य—अभी तक डाक्टरी—

वैद्य—(बात काटकर) डाक्टरी-आक्टरी एक न चलेगी।

तपेदिक के लिये तो बस यही रावन-बान है । कहो तो किताब खोलकर दिखा दूँ ।

मनुष्य—उसका हाल यह है—

वैद्य—(बात काटकर) अजी उसका हाल तुम क्या पूछो हो, क्या कहो हो—मुझसे सुन लो । मैं क्या कोई यो ही बन-ठनकर बैठ गया हूँ ?

मनुष्य—उसका हा—

वैद्य—(बीच ही में) उसका हाल यह है कि सूखकर काँटा हो गई है; रंग पीला पड़ गया है जिसे कमलवाउ कहते हैं; भोजन जो करती है सो पचता नहीं है; तलवों में जलन—क्या कहते हैं उसे ? हाँ, सिर मे कभी भारीपन और कभी हलकापन बना रहता है; थोड़ा-सा भी काम करे तो थक जाती है; भूख इतनी कम हो गई है कि सेर-भर बेझड़ की रोटियाँ भी नहीं चलती; इत्यादि-इत्यादि ।

मनुष्य—(वैद्यजी के पैर छूकर) आप धनन्तर के औतार हैं । (रोकर) मेरे तो एक वही छोरी है; जैसे बने वैसे उसे बचाइए ।

वैद्य—(मूछों पर ताव देता हुआ) तुम रत्ती-भर भी चिंता मत करो, और देर भी मत करो । जो उसको कुछ भी हो जाय तो उसके सग मुझे भी जला देना । बस इससे ज्यादा मैं अब और क्या कहूँ ?

मनुष्य—(फिर वैद्य के पैर छूकर)

'मैं केहि कहौं बिपति अति भारी;
श्री रघुबीर धीर हितकारी।'

यो तुलसीदासजी कह गए हैं। जो कहीं छोरी बच गई तो कभी भी मै आपका गुन नहीं भूलूँगा। (छत की ओर देख-कर) आपके कमरे की छत पुरानी हो गई है; यह दास बढ़ई का काम करता है। कहिए तो तखते बदल दूँ। आपकी सवा यों ही करूँगा; कुछ लूँगा नहीं।

वैद्य—हाँ, बदल देना, और उस समय कुछ न लेना, पर अभी तो तुम—खैर, दो सेर ही सही। चार रुपए का हुआ। बस, लड़की बच गई। (तोलने लगता है) भगवान ने बचाया। आदमी बेचारा क्या कर सके है ?

(आदमी दवा लेकर रुपए देकर जाता है। इक्केवाले का प्रवेश)

इक्केवाला—हजूर, मेरे घोड़े को बलहड्डी की बीमारी हो गई है, उसके लिये कुछ बता देते।

वैद्य—हाँ, जब घोड़े की हड्डियों में बल कम हो जाता है, या किसी हड्डी मे कम, किसी मे ज्यादा हो जाय है तभी यह बीमारी होती है जिसे कि घोड़ेवाले बलहड्डी की बीमारी बतलाते हैं।

इक्केवाला—तो इसकी दवा ?

वैद्य—हम तुम्हें एक ऐसी दवा बतला दें, जिससे बल और हड्डी दोनो ठीक हो जायँ, तो तुम क्या करो ?

इक्केवाला—अजी महाराज, 'नेकी और पूछ-पूछ !'

वैद्य—उससे पूँछ की बीमारियाँ भी दूर हो जायगी—घबड़ाओ मत। हमने हाल मे एक ऐसा पाक बनाया है जिसे खाने से न-जाने कितने बुड्ढे घोड़े जवान हो चुके है, और इक्के की जगह बग्घी घसीटने लगे है। हमारी सलाह है कि तुम भी उसे खाओ। रही घोड़े की, सो थोड़ा-सा पाक कडुए तेल में भिगोकर, पीसकर, गरम करके घोड़े के पैर से बॉधकर सेक दो। फिर देखो, क्या होता है।

इक्केवाला—मुर्द-घटे से लाकर खोपड़ी का धुआँ देने—

वैद्य—(बीच ही मे) सेर-भर मे काम हो जायगा। बस दो रुपए पड़ेगे। तुम और घोड़ा दोनो ठीक हो जाओगे। हकीम सफूफुद्दीन भी अपने जानवर के लिये उस दिन बहुत इधर-उधर दौड़े-धूपे, अंत मे इसी दवा से घोड़ा भी ठीक हो गया और गाड़ी भी। धुरे और बम तक जुड़ गए! भला कुछ ठिकाना है !! चीज ही ऐसी है। (तोलने लगता है)

इक्केवाला—बहुत अच्छा महाराज! (रुपए निकालकर देता और दवा लेकर जाता है)

वैद्य—(मुसकराहट के साथ अँगड़ाई लेता है और फिर सहसा सावधान होकर, इधर-उधर देखकर) अरी रामसहेली! ओ रामसहेली!

(नेपथ्य में—'अजी क्या है? दाल पीस रही हूँ।')

वैद्य—अरी ढढ्ढो, तुझे दाल पीसने की पड़ी है; यह देख, आज अभी कितने का बिका। तुझ पै यह न हुआ कि सबेरे से जाकर अड़ोस-पड़ोस की औरतो को बहकाती कि औरतो के सब रोगो की एक ही दवा निकाली गई है जो दो रुपए में सेर-भर मिले है।

(हाथो में दाल की पीठी लगाए रामसहेली का प्रवेश)

राम०—मेरी रॉड़ की दवा। घर का काम भी नहीं करने दो हो।

वैद्य—(मुसकराता हुआ) अरी हरामजादी, तेरे नाम से लोटस निकालूँगा लोटस—विद्यापन ; हाँ।

राम०—खबरदार मुझे गाली-वाली दी तो; नहीं फिर उस दिन कैसी होती फिरेगी ; कह दिया है।

वैद्य—तू बड़ी बन-चक्कर है। अरे, हम तो भले की कहे हैं और तुझे बुरा लगे है। अरी तेरे नाम से विद्यापन निकलेगा विद्यापन, कि राजवैद्या रामसहेलीदेवी इस्त्री और पुरषो का बड़ा बढ़िया इलाज करती है; घर मे सफाखाना बना रक्खा है, छिपे हुए रोगो को पर्घट करती है। परससा-पत्र मँगाकर पढ़िए। झूठा साबित करनेवाले को पान्सौ रुपया इनाम . फायदा न हो दूने दाम वापस; सच्चे का बोलवाला, झूठे का मुँह काला।

राम०—(खुश होकर) ए, बड़ी-बड़ी बातें छपेगी !

वैद्य—क्या पूछती है ! रानी-महारानियाँ फँसेंगी; कन्या-

पाठशालाओ की अद्धापकाएँ फँसेगी; कालेज में पढ़नेवाली फैसनेविल लड़कियाँ फँसेगी; कमजोर दिमागवाले आधे-सिड़ी लड़के फँसेगे। परोफेसरो की वहुएँ फँसेंगी, डाकटरो की लुगाइयाँ फँसेंगी; तू अभी जाने क्या ?

राम०—(बहुत खुश होकर) तो मुझे क्या करना होगा ?

वैद्य—कुछ नहीं; बस तिर्फले का चूरन और आमला-पाक तोल-तोलकर डिब्बियो में भरना और उसकी पार्सलें बनानी होंगी; गोंद से उस पर चिप्पी चिपकानी होगी। पता-वता लिखने के लिये दस रुपए महीने मे कोई बी० ए०-पास रख लिया जायगा घंटे-दो घंटे के लिये। धीरे-धीरे काम बढ़ेगा तब छापेखाने-वापेखाने की देखी जायगी।

राम०—(खुश होकर वैद्यजी की ओर बढती है और वैद्य के चेहरे और कपड़ों पर पीठी-सने हाथ फेरती हुई) ऐसा मन करे है कि क्या इनाम दे दूँ तुम्हे—

वैद्य—(पीछे हटता हुआ) हैं! हैं! (दुपट्टे से मुँह पोंछता हुआ) अरी मूर्ख, तूने यह क्या किया ? मेरे सब कपड़े-चपड़े बिगाड़ दिए!

राम०—अजी मरे कपड़े, जब इतने जने फँसेंगे तो कपड़ों की क्या कमी रह जायगी। थानों का ढेर लग जायगा। तो बताओ, आज क्या बने।

वैद्य—वही; (पीठी-लगे दुपट्टे से मुँह पोंछने के प्रयत्न में फिर



दारोगा—(वैद्य से) तुमने यह लड़की कहाँ से उड़ाई ?
(पृष्ठ ८१)

चेहरे पर पीठी लगाता हुआ) बस, बनने दो आज दही के बड़े-मिरचे जरा बोलती हुई रहे ।

(पुलिस के साथ भंडू जाट का प्रवेश। रामसहेली और वैद्य के चेहरों का रंग उड़ जाता है । दोनों काँपने लगते हैं)

भंडू—(दारोगा से, रामसहेली की ओर संकेत करता हुआ) यही है मेरी लड़की रामसहेली । (पुलिस वैद्य को पकड़ती है)

दारोगा—(वैद्य से) तुमने यह लड़की कहाँ से उड़ाई ?

वैद्य—हजूर, हजूर, हमने काहे को उड़ाई है; हमारे पास तो अपने आप लोग आमे हैं इलाज कराने ।

जाट—(वैद्य के सिर पर चपत जमाता हुआ) अबे बम्मन के, अपने पड़ोसियों को भी नहीं छोड़ा ! वो दिन भूल गया जब मेरे यहाँ जूठी बेझड़ की रोटी तोड़े था ? यहाँ वैद बनके बैठा है और छुपा-चोरी लड़कियाँ पंजावियो के हाथ बच है ! (दारोगा से) हजूर, घर मे और न-जाने कितनी निकलेंगी ?

दारोगा—(सिपाहियों से) घुस तो जाओ; लो तलाशी । (जाट से) सो ही तो हम सोचते थे—

वैद्य—(बीच ही में दारोगा से) अजी जमादारजी, जो तुम्हें चाहिए सो ले लो—

दारोगा—चुप, कंबख़्त ! बाकायदा दूकान लगा रक्खी है साले ने ! (जाट से) गोरखपुर, जौनपुर, आगरा, दिल्ली, मेरठ न-जाने कहाँ-कहाँ से लड़कियों के गायब होने की रिपोर्टें

आ रही है ! हम सोच रहे थे कि आखिर यह अड्डा इस शहर में है कहाँ ? अब जाकर पता चला कि (वैद्य की ओर) हज़रतेशैतान आप ही है ।

वैद्य—और कह लीजिए जो हजूर चाहे । मेरा कोई दोष नहीं ! यह जाट और दूसरे लोग भी अपनी लड़कियों को वैदक पढ़ने मेरे पास भेजा करें हैं ।

(पुलिस कई लड़कियाँ निकालकर लाती है)

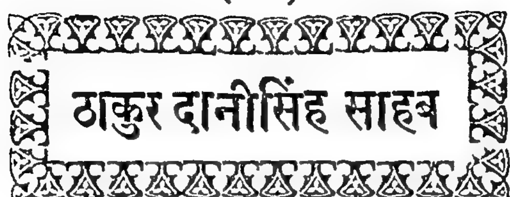
जाट—(हँसकर) है ! ये नाताकती की गोलियाँ-सी कहाँ से निकल पड़ीं ? क्यों वैदजी ? (रामसहेली की ओर देखता है)

राम०—(वैद्य की ओर संकेत करके) इन्हीं के कहने-सुनने से मै इन लड़कियों को बहकाके लाई थी । मेरा क्या कसूर है ? (रोती है)

दारोगा—(पुलिस से) ले चलो सबको थाने ।

(सब जाते हैं)

(३)



ठाकुर दानीसिंह साहब

(ठाकुर साहब कई खुशामदियों से बातें कर रहे हैं)

ठाकुर—और आप तो सब बाते जानते है, लेकिन फिर भी मै विश्वासपूर्वक, बल्कि यकीनन कहता हूँ कि मैने इस ससार को आप लोगो से कहीं अधिक देखा-भाला और जाचा-पड़ताला है।

खुशा०—इसमे क्या शक है।

ठाकुर—आजकल के आदमियो के मुकाबिले मे पहले लोगों के आचार-व्यवहार, बातचीत, डीलडौल, जिस्म-शरीर दुगुने—

एक खुशा०—बल्कि तिगुने—

दूसरा खुशा०—बल्कि चौगुने—

तीसरा०—खुशा बल्कि पॅचगुने—

ठाकुर—बल्कि छ:गुने, सतगुने, अठगुने, नॉगुने, दसगुने वगैरह हुआ करते थे।

खुशा०—(एक दूसर की ओर मुसकराकर देखते हुए) बेशक, इसमे क्या झूठ है!

ठाकुर—नहीं, बहुत-से लोगों को मेरी बात पर विश्वास नहीं होता।

एक खुशा०—उनकी बात जाने दीजिए।

दूसरा—वे सब-के-सब बेवकूफ हैं।

तीसरा—इसमें क्या शक है।

चौथा—भला कहाँ ठाकुर साहब और कहाँ वे!

ठाकुर—मतलब यह है कि अगर ऐसा न होता तो आज हिंदू-जाती संसार से कभी की क्यो न लोप हो गई होती?

एक खुशा०—भला इस बात का वे लोग क्या जवाब रखते हैं?

ठाकुर—मेरा कहना तो यह है कि आजकल के कुसंस्कारो ने हमारे बच्चों यानी लड़केवालो को गुड्डा-गुड़िया बना दिया—

खुशा०—सच है।

ठाकुर—यानी उन्हें किसी काम का न रक्खा—

खुशा०—बेशक।

ठाकुर—यानी वे किसी भी मर्ज की दवा न रहे, सिवा इसके कि अपनी खटिया पर पड़े-पड़े कब्ज की शिकायत किया करें और डाक्टरों, हकीमो, मंतकियो-ज्योतिषियों, झाड़ूवालो—ऐं? बल्कि झाड़ाफूँकीवालो, चूरनवालो, टोटका

और छू-मंतर करनेवालों को रोज कई बार फीस दिया करें; खाना-वाना तो कुछ न खावें, दिन-रात बस निरा दूध पिया करें, और इतना होने पर भी अजीरन् की शिकायत किया करें!

खुशा०—आपका कहना बिलकुल ही सच है।

ठाकुर—भगवान् जाने इनके पेट को क्या हो गया है, जो जरा खाने से ही—बस कुछ पूछिए न।

खुशा०—क्यों न हो, आप तजुर्बे की बातें कहते हैं।

ठाकुर—मगर शोक कि फिर भी मेरी बात कोई नहीं मानता! क्या झूठी दुनिया रह गई है, कि अपना मतलब निकल जाने के बाद कोई किसी को नहीं पहचानता!

खुशा०—जमाना बुरा—

ठाकुर—(बीच ही में) और मेरी तो यह राय है कि जो कुछ मेरे यहाँ पुराने जमाने से होता आया है, मैं तो—जब तक मेरा दम गनीमत है तब तक—उसी लीक पर चलूँगा।

एक खुशा०—'स्वधर्म में निधन श्रेय' ऐसा कुछ महात्मा लोग आपस में कहते-सुनते देखे जा सकते हैं।

ठाकुर—देखिए न! हम लोगों में बहादुरी आवे कहाँ से? रद्दी-सद्दी, सड़ेबुसे और कूड़ा-करकट उपन्यास तो पढ़ते हैं, और वीरता की कहानियों से बात नहीं करते! ऐसी अमूल्य पुस्तक उठाकर भी नहीं देखते जैसे टॉड साहब का राजस्थान।

एक खुशा०—उसमें तो वीरता कूट-कूटकर—

ठाकुर—(बीच ही में) अजी उसके बारे में आप लोग क्या जान सकते है ? हमसे पूछिए हमसे—हम क्षत्रिय है। जनाब ! उसमे ऐसी-ऐसी वीरता की बाते लिखी है कि जिनको पढ़कर मेरी तो—सच कहता हूँ कि—भुजाएँ फड़कने लगती है; यहाँ तक कि कभी-कभी तो मै—क्या कहूँ—पास बैठे हुए आदिमियों को—आदमियो पर हाथ छोड़ बैठता हूँ।

(खुशामदी एक दूसरे की ओर देखकर हँसते हुए 'क्यों न हो, आखिर आप भी तो उन्हीं मे से हैं' आदि कहते हैं)

ठाकुर—जी हाँ, यही तो मेरा भी कहना है, आखिर मै भी तो उन्हीं मे से हूँ। इस वदन मे (छाती पर हाथ रखता हुआ) भी तो वही खून जोश खाता है। यही सब बाते दिखलाने के लिये ही मैने आज एक पुतलीवाले से कह दिया था। वह अब आता ही होगा। मै भी आप लोगो और इन लोगो को इसी कारण से—इसी बहाने—कुछ-न-कुछ देते रहने की इच्छा किया करता हूँ कि जिसमे आप लोग मेरी जगह-जगह प्रशंसा किया करें, क्योंकि

'रुस्तम रहा जमीं पे न वह साम रह गया,
मर्दों का आसमा के तले नाम

(एक ओर से पुतलीवाले का और दूसरी ओर से कुछ चदा

माँगनेवालों का प्रवेश) क्या कहा ? हाँ—

'आसमाँ के तले नाम रह गया ।'

आइए महाशयजी ! क्या कहूँ, यह पुतलीवाला—

पुतली०—(कई बार झुककर) सलाम हजूर ! हजूर का बोलबाला, वैरियों का मुँह काला ; दाता हजूर को सलामत रक्खै, आस-औलाद बढ़ावै !

ठाकुर—अच्छा अब बकै मत। (रोब से सबकी ओर देखते हुए) झटपट अपना सरंजाम ठीक कर ।

(रोब से सबकी ओर देखत हैं । पुतलीवाला सरजाम ठीक करता है)

एक चंदा माँगनेवाला—(दूसरे के कान म) यह तमाशा क्यों कराया जा रहा है ? (ठाकुर साहब सुन लेते हैं)

ठाकुर—लीजिए ! अब प्रश्न यह है कि पुतलियो का तमाशा क्यों कराया गया है, इससे लाभ क्या ? महाशयजी ! इससे बड़े-बड़े अच्छे उपदेश मिल सकते है । समझनेवाले क लिये सभी कहीं सब कुछ है और बेसमझ के लिये कहीं भी कुछ नहीं । यह तो अपनी-अपनी समझ की बात रही : भला सोचने की बात है कि अगर इससे कुछ भी लाभ न होता, तो आज आप यहाँ तक आने का कष्ट ही क्यों उठाते ?

एक खुशा०—सच है ।

दूसरा—ठाकुर साहब ने भी क्या भीतरी कही है ?

ठाकुर—हाँ, तब तो आपके दर्शन ही नहीं हो सकते थे। (सब एक दूसरे की ओर देखते और जैसे-तैसे अपनी हँसी रोकते हैं) आप कुछ भी क्यों न समझें, या न समझें, मैं तो यही कहूँगा कि यह संसार भी पुतलियों का एक तमाशा है। हम सब लोग पुतलियाँ हैं। अगर इस तमाशे से लाभ नहीं तो इससे भी कुछ लाभ नहीं! मतलब यह है कि अगर ईश्वर की राय भी आपसे मिल जाय तो न सिर्फ अभी हाल ही प्रलै हो जाय, बल्कि कभी भी किसी के भी न बच रहने से जरा भी किसी किस्म की भी पुतलियों का तमाशा किसी को भी कभी भी न दीखे—या न दीख सके।

खुश०—वाह! क्या बात निकाली है।

चंदेवाला—मेरा यह मतलब नहीं था—

ठाकुर—नहीं-नहीं, आपका कुछ भी मतलब क्यों न हो, बहुत-से लोग मुझे बेवकूफ या आधा पागल समझते हैं। वे अगर मुझे पूरा ही पागल समझें तो भी मेरे पास उनके लिये कोई इलाज नहीं। आप बुरा न मानिएगा, मैंने आपके ऊपर कुछ नहीं कहा। देखिए, बड़े-बड़े राजा लोग अभी हाल ही आपके सामने आते होंगे। मै कोई झूठ नहीं कहता। या तो आप टॉड साहब का 'इस्थान' पढ़ लीजिए और या फिर अपनी आँखें खोलकर यह तमाशा देख लीजिए। तब आपकी समझ में सब बातें आ सकेंगी।

(तमाशा शुरू होता है। झाड़ू देनेवाला, भिश्ती आदि आते हैं और अपना-अपना काम करके चले जाते हैं। दरबार जमा होता है। अकबर बादशाह सिंहासन पर और सब राजा लोग इधर-उधर बैठते हैं। मुजरा होता है)

पुतली०—देखिए हजूर, अब राजा मानसिंह चीतौड़ जीतने चले—

ठाकुर—ठहर ! ठहर ! बदमाश !

पुतली०—ऐं ? देखिए जे चले।

(मानसिंह की पुतली आगे बढ़कर बादशाह को कई बार सलाम करके चलने के लिये पीठ फेरती है)

ठाकुर—(खड़े होकर, बड़े जोश के साथ) ठहर! पहले बतला कि कौन कहाँ और क्यों जाता है।

पुतली०—हजूर, जे (पुतली को चलाता हुआ) राजा मान-सिंह जैपुरवाले, बादसाह से हुकुम लेकर, चीतौड़गढ़ को जीतने—

ठाकुर—(क्रोध और जोश में) अरे जातिद्रोही ! कलंकी ! बदमाश ! पहले मुझसे तो जान बचा ले, फिर कहीं जाने का नाम लीजो। मै अभी सालो को ढेर—(ठाकुर साहब डंडा लेकर पुतलियों पर पिल पड़ते हैं और मानसिंह की पुतली के अलावा और भी कई पुतलियाँ तोड़-फोड़ डालते हैं, दो-एक हाथ पुतलीवाले के भी जमाते हैं। देखनेवाले आश्चर्य और भय से बगलें झाँकते हैं *)

* ऐसा ही एक सीन 'Don Quixote' में भी आया है।—लेखक

ठाकुर—हाँ, तब तो आपके दर्शन ही नहीं हो सकते थे। (सब एक दूसरे की ओर देखते और जैसे-तैसे अपनी हँसी रोकते हैं) आप कुछ भी क्यों न समझें, या न समझें, मैं तो यही कहूँगा कि यह संसार भी पुतलियों का एक तमाशा है। हम सब लोग पुतलियाँ है। अगर इस तमाशे से लाभ नहीं तो इससे भी कुछ लाभ नहीं! मतलब यह है कि अगर ईश्वर की राय भी आपसे मिल जाय तो न सिर्फ अभी हाल ही प्रलै हो जाय, बल्कि कभी भी किसी के भी न बच रहने से जरा भी किसी किस्म की भी पुतलियो का तमाशा किसी को भी कभी भी न दीखे—या न दीख सके।

ख़ुशा०—वाह! क्या बात निकाली है।

चंदेवाला—मेरा यह मतलब नहीं था—

ठाकुर—नहीं-नहीं, आपका कुछ भी मतलब क्यों न हो, बहुत-से लोग मुझे बेवकूफ या आधा पागल समझते हैं। वे अगर मुझे पूरा ही पागल समझें तो भी मेरे पास उनके लिये कोई इलाज नहीं। आप बुरा न मानिएगा, मैंने आपके ऊपर कुछ नहीं कहा। देखिए, बड़े-बड़े राजा लोग अभी हाल ही आपके सामने आते होंगे। मैं कोई झूठ नहीं कहता। या तो आप टॉड साहब का 'इस्थान' पढ़ लीजिए और या फिर अपनी आँखें खोलकर यह तमाशा देख लीजिए। तब आपकी समझ में सब बातें आ सकेंगी।

(तमाशा शुरू होता है। झाड़ू देनेवाला, भिश्ती आदि आते हैं और अपना-अपना काम करके चले जाते हैं। दरबार जमा होता है। अकबर बादशाह सिंहासन पर और सब राजा लोग इधर-उधर बैठते हैं। मुजरा होता है)

पुतली०—देखिए हजूर, अब राजा मानसिंह चीतौड़ जीतने चले—

ठाकुर—ठहर ! ठहर ! बदमाश !

पुतली०—ऐं ? देखिए जे चले ।

(मानसिंह की पुतली आगे बढ़कर बादशाह को कई बार सलाम करके चलने के लिये पीठ फेरती है)

ठाकुर—(खड़े होकर, बड़े जोश के साथ) ठहर ! पहले बतला कि कौन कहाँ और क्यों जाता है ।

पुतली०—हजूर, जे (पुतली को चलाता हुआ) राजा मानसिंह जैपुरवाले, बादसाह से हुकुम लेकर, चीतौड़गढ़ को जीतने—

ठाकुर—(क्रोध और जोश में) अरे जातिद्रोही ! कलंकी ! बदमाश ! पहले मुझसे तो जान बचा ले, फिर कहीं जाने का नाम लीजो । मै अभी सालो को ढेर—(ठाकुर साहब डंडा लेकर पुतलियों पर पिल पड़ते हैं और मानसिंह की पुतली के अलावा और भी कई पुतलियाँ तोड़-फोड़ डालते हैं, दो-एक हाथ पुतलीवाले के भी जमाते हैं। देखनेवाले आश्चर्य और भय से बगलें झाँकते हैं *)

* ऐसा ही एक सीन 'Don Quixote' में भी आयाहै।—लेखक

पुतली०—हाय मैं मरा—

ठाकुर—'हाय-हाय' कैसी ? साला चीतौड़ जीतेगा !

पुतली०—मैं मरा—हाय मेरा रुजगार गया—

ठाकुर—(कुछ ठंडे होकर) क्या कहा ? क्या हुआ ? क्या हुआ ?

पुतली०—हुआ क्या हजूर! अब तो मैं जीता ही मरा—मै तो गरीब आदमी हूँ, अब कैसे अपनी रोजी कमाऊँगा। हाय, इधर कमर मे—

ठाकुर—क्या ?

पुतली०—मैं यहाँ क्यो आया ? हाय करम—

ठाकुर—(नरमी के साथ) तेरी क्या हानि हुई ?

पुतली०—मेरी रोजी गई—

ठाकुर—अच्छा, तो कितने का नुकसान हुआ, सच-सच बता।

पुतली०—पाँच रुपए का।

ठाकुर—(उदासीनता के साथ) हम नहीं जानते, तूने ऐसा बुरा तमाशा क्यों दिखाया ?

पुतली०—(अपना सामान समेटता और रोता हुआ) अब किसको रोऊँ ? हाय, गरीब की कहीं सुनवाई नहीं—

ठाकुर—क्या तुझे मालूम नहीं था कि हम लोग मान-सिंह से नाराज हैं ?

पुतली०—हजूर ! मेरे तो करम फूट गए, मैंने अच्छा तमासा—

ठाकुर—(सोचकर) और हम उसे अपनी जाति का कलंक समझते हैं—

पुतली०—तो तमासे का जो कुछ ठैरा था सो ही दिलवा दीजिए, आगे आपकी मरजी—

ठाकुर—हम तो दो आने देंगे।

पुतली०—हजूर, ऐसी गरीब-मार मत करो, आठ आने ठैरे थे।

ठाकुर—किससे ठैरे थे?

पुतली०—हजूर से—

ठाकुर—किसके सामने? (खुशामदियों की ओर) हाँ, बिना गवाही के मुकदमा खारिज समझा जाता है।

पुतली०—मैं तो गरीब हूँ हजूर, झूठ नहीं कहूँ हूँ, आज सबेरे आपसे ही ठैरे थे।

ठाकुर—अच्छा तो अगर मान भी लें कि 'ठैरे थे' या 'आठ आने ठैरे थे,' तो भी ठैरने से क्या होता है? आठ आने की जगह आठ रुपए—या बल्कि यों कहिए (खुशामदियों की ओर) कि आठ सै रुपए—ठैरते तो क्या मैं दे देता? ऐसा अंधेर कैसे हो सके है? (पुतलीवाले की ओर) जो चार आदमी कहेंगे, सो दूँगा। (खुशामदियों की ओर) तमाशा देखने-

पुतली०—हाय मैं मरा—

ठाकुर—'हाय-हाय' कैसी? साला चीतौड़ जीतेगा!

पुतली०—मै मरा—हाय मेरा रुजगार गया—

ठाकुर—(कुछ ठंडे होकर) क्या कहा? क्या हुआ? क्या हुआ?

पुतली०—हुआ क्या हजूर! अब तो मैं जीता ही मरा—मै तो गरीब आदमी हूँ, अब कैसे अपनी रोजी कमाऊँगा। हाय, इधर कमर मे—

ठाकुर—क्या?

पुतली०—मैं यहाँ क्यो आया? हाय करम—

ठाकुर—(नरमी के साथ) तेरी क्या हानि हुई?

पुतली०—मेरी रोजी गई—

ठाकुर—अच्छा, तो कितने का नुकसान हुआ, सच-सच बता।

पुतली०—पॉच रुपए का।

ठाकुर—(उदासीनता के साथ) हम नहीं जानते, तूने ऐसा बुरा तमाशा क्यो दिखाया?

पुतली०—(अपना सामान समेटता और रोता हुआ) अब किसको रोऊँ? हाय, गरीब की कहीं सुनवाई नहीं—

ठाकुर—क्या तुझे मालूम नही था कि हम लोग मान-सिंह से नाराज हैं?

पुतली०—हजूर ! मेरे तो करम फूट गए, मैंने अच्छा तमासा—

ठाकुर—(सोचकर) और हम उसे अपनी जाति का कलंक समझते हैं—

पुतली०—तो तमासे का जो कुछ ठैरा था सो ही दिलवा दीजिए, आगे आपकी मरजी—

ठाकुर—हम तो दो आने देंगे।

पुतली०—हजूर, ऐसी गरीब-मार मत करो, आठ आने ठैरे थे।

ठाकुर—किससे ठैरे थे?

पुतली०—हजूर से—

ठाकुर—किसके सामने? (खुशामदियों की ओर) हाँ, बिना गवाही के मुकदमा खारिज समझा जाता है।

पुतली०—मैं तो गरीब हूँ हजूर, झूठ नहीं कहूँ हूँ, आज सबेरे आपसे ही ठैरे थे।

ठाकुर—अच्छा तो अगर मान भी लें कि 'ठैरे थे' या 'आठ आने ठैरे थे,' तो भी ठैरने से क्या होता है? आठ आने की जगह आठ रुपए—या बल्कि यों कहिए (खुशामदियों की ओर) कि आठ सै रुपए—ठैरते तो क्या मैं दे देता? ऐसा अंधेर कैसे हो सके है? (पुतलीवाले की ओर) जो चार आदमी कहेंगे, सो दूँगा। (खुशामदियों की ओर) तमाशा देखने-

वाले चार भलेमानस जो कह देंगे, सो दे दिया जागा। क्यों साब! इसका तमाशा कै पैसे का था?

पुतली०—हजूर! मैंने तो अपने जानें अच्छा-से-अच्छा—

ठाकुर—(जोश में आकर बीच ही में) तमाशा तो तूने ऐसा दिखाया था कि आठ आने की जगह तुझे आठ जूते भी नहा दिए जाने चाहिएँ। (क्रोध से) और तू जो कहता है कि 'ठेरे थे,' सो ठेरने से क्या होता है? हम कहते हैं कि 'आठ आने ठेरे थे'—ठेरे थे तो क्या हुआ? कुछ दे तो नहीं दिए गए थे? भला सोचने की बात है, दिया तो वही जायगा जो वाजिब होगा। अगर हमने आठ आने ठेराकर तुझे दे दिए होते, तो बात दूसरी होती, क्योंकि 'प्रान जायँ, पर बचन न जाई।' बस, अब तो वही मिलेगा जो ठीक समझा जायगा। (खुशामदियों की ओर) क्यो न? और पहले तो इसी बात का तेरे पास क्या सबूत है कि हमने जिस वक्त तुझसे ठेराए उसी वक्त आठ आने दे नहीं दिए। ऐसा तू बड़ा भोला है न, जो अपने पैसे छोड़ जाता!

एक चंदेवाला—ठाकुर साहब, क्या कहें, नुकसान तो विचारे का हुआ ही—

ठाकुर—अजी नुकसान-फायदा तो होता ही रहता है। (पुतलीवाले से) अरे भाई चार आने से ज्यादे नहीं देंगे, तुझे लेने होयँ तो ले जा, नहीं तो मौज कर।

पुतली०—(रोकर) वाह हजूर वाह, मैं तो गरीब आदमी हूँ—मेरी कहाँ सुनाई होगी; न मैं कोई पढ़ा-लिखा हूँ; मै तो आप लोगों का गुलाम हूँ। जो आपकी मर्जी सो ही मेरे लिये भगवान् की मर्जी; करमो मे वदा था सो हुआ; जे सामान जो टूटा है इसका भी कुछ मिल जाता तो बड़ी मेहरबानगी होती।

ठाकुर—अच्छा, अभी तो तू चार आने ले जा, बाकी के लिये कल्ह बात करियो।

पुतली०—(हाथ जोड़कर और ठाकुर साहब के पैर छूकर) हाँ हजूर, कुछ तो परवस्ती होनी चाहिए!

(ठाकुर साहब बड़ी मुश्किल से तरह-तरह का मुँह बनाते हुए चार आने अटी में से निकालकर देते हैं। पुतलीवाला लेता है)

पुतली०—हजूर की खिजमत मे कल्ह हाजर होऊँगा। हाँ, हजूर का बोलबाला रहे—(सामान लेकर जाता है)

ठाकुर—अरे मंसुखा! ओ मंसुखा।

(मंसुखा नौकर का प्रवेश)

मंसुखा—हजूर—हुकुम?

ठाकुर—(पुतलीवाले की ओर इशारा करके) देख, वो जा रहा है, दीखा? हाँ, जब कभी वो पुतलीवाला आवे, तो कह दीजो कि ठाकुर साहब घर पै नहीं हैं। जब कभी वो आवे तभी दरवाजे पर से ही टरका दिया करियो। बदमाश कहीं

का, देखूँ अब क्या लिए लेता है ? मुझे ही ठगना चाहता था ! (चंदेवालों से) हाँ महाशयजी, कहिए; पुतलीवाले से छुटा, अब आप कहिए।

एक चंदेवाला—ठाकुर साहब, करोड़ों अनाथ बालक विधर्मी हो रहे हैं। उनकी रक्षा करने के लिये—

ठाकुर—अच्छा, तो जो विधर्मी हो गए हैं उनकी रक्षा के लिये—हाँ—विधर्मियों की रक्षा के लिये मैं कुछ नहीं दे सकता।

दूसरा चंदेवाला—विधर्मियों की रक्षा के लिये नहीं, बल्कि उन बच्चों की परवरिश के लिये जो अनाथ हैं और सहायता न मिलने पर विधर्मी हो जायँगे—

ठाकुर—ऐसों के लिये, जो थोड़े ही दिनों में विधर्मी हो जायँगे, मेरे पास कौड़ी नहीं है। और दूसरे, इस बात का क्या सबूत है कि वे सब क्षत्रिय हैं ?

तीसरा—एक ऐसा अनाथालय बन जाय जिसमें—

ठाकुर—हाँ, मैं समझ गया, मुझे भी घर की मरम्मत करानी है। अच्छा, तो इसके बारे में आप फिर कभी मुझसे मिलिए। इस वक्त तो मुझे फुरसत नहीं है। सेठ तिलोक-चंद के घर दावत है। कल्ह मिलिए। सब काम हो जायगा। मैं अच्छे कामों के लिये चंदा क्या, अपनी जान तक दे देता हूँ—दे दिया करता ।

चंदेवाला—(दूसरे की ओर मुसकराते हुए) बहुत अच्छा, नमस्ते ।

(चंदेवाले जाने लगते हैं। ठाकुर साहब मसुखा से उनकी ओर इशारा करके कान में कुछ कहते हैं। सहसा वे पीछे को मुँह मोड़कर ठाकुर साहब को ऐसा करते देखते हैं, और हँसकर चले जाते हैं)

ठाकुर—(खुशामदियों से) बदमाशों ने नाक में दम कर लिया ।

खुशा०—इसमें क्या शक है ।

ठाकुर—(उठकर चलते हुए) देखूँ, मुझसे क्या लिए लेते हैं ? (सब लोग उनके पीछे-पीछे जाते हैं) ऐसों का तो यही इलाज है ।

खुशा०—इसमें क्या शक है !

हिंदी की खींचा-तानी*
(लाहोरी सम्मेलन)

(वकीलों के एक दलाल के साथ लाल पगड़ी और लंबा अँगरखा पहने, हाथ में सोटा लिए एक परदेशी का प्रवेश)

दलाल—हाँ, महाशयजी, चले आइए इधर ही। यही रास्ता है सुप्रीम कोर्ट का।

परदेशी—अरे, ऐं हैं! तुम मुझे कहाँ खींचे-खींचे फिरते हो? यहाँ कहाँ ले आए? (दर्शकों की ओर इशारा करता हुआ) मुझे इतने सारे वकीलों की जरूरत नहीं है। मैं तो एक ही वकील करूँगा। और सो भी ऐसा जो अपने

---

* यह प्रहसन हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के छठे अधिवेशन के अवसर पर खेलने के लिये भरतपुर की हिंदी-नाटक-मंडली के अनुरोध से सन् १९१५ में लिखा गया था। खेद है, आपस के मनमुटाव के कारण उक्त अधिवेशन लाहोर में न हो सका, इसलिये यह प्रहसन भी न खेला जा सका। भरतपुर की जिस नाटक-मंडली ने इसे लिखाया था और जो वहाँ जाकर इसे खेलना चाहती थी वह भी अब, जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इस सांसारिक रंगमंच से तिरोहित हो चुकी है।—लेखक

मवक्किलों के लिये खूब लड़े-झगड़े, और मुकदमे का फैसला सुना दिए जाने पर भी बहस किए ही जाय।

द०—पहले आप यह तो बतलाइए कि आपका मुकदमा क्या है? तब वैसे ही वकील के पास मैं आपको ले चलूँ।

पर०—तो क्या तुम कई वकीलों के दलाल हो? बस जी, रहने दो, मेरी तुमसे नहीं बनेगी। न-जाने तुम मुझे किस रँगरूट के पास ले जाकर फँसा दोगे।

द०—नहीं जनाब, ऐसे के पास चलेंगे जो छः बार एल्-एल्•बी० में फेल होकर सातवीं बार में पास हुआ है। क्योंकि फेल होने से भी तो लियाकत और तजुर्बा बढ़ता ही है न?

पर०—बढ़ता ही होगा। (हाथ जोड़कर) बाबा, मेरा पीछा छोड़; मैं अपना काम अपने आप, बिना किसी भी वकील के, कर लूँगा। असालतन कर लूँगा—असालतन। मुझे वकील नहीं करना। वाह, अच्छा तूने मुझे दो घंटे हैरान किया! क्या खूब!!

द०—(अलग) यह आदमी यों झाँसे में नहीं आवेगा। (परदेशी से) देखो जी, यह शहर है लाहौर, और पंजाब का है यह दारुलसल्तनत यानी—

पर०—यानी राजधानी?

द०—जी हाँ, यहाँ आपकी राजधानी-वाजधानी को कोई नहीं समझता। मैं आपसे कहे देता हूँ कि जो आपने मेरी मार्फत काररवाई नहीं की तो—बस, धोखा खाइएगा। क्योंकि यहाँ आपकी भासा-वासा की कछु भी कदर नहीं है। और, यहाँ के आदमी जब पढ़ने-लिखने में जल्दी करते हैं तब 'शुभ' पर 'शुबह' करते हुए 'गिद्ध' को 'गधह' समझ लेते हैं। आपको तो वो न-जाने क्या समझेंगे? चाहे आप 'बिरहमन'—

पर०—हा शोक!

'शुभ' को कहते 'शुबह', 'गिद्ध' को 'गदह' बताते;
यहाँ 'बिरहमन' बनकर 'ब्राह्मण' नहीं लजाते।
कुछ-का-कुछ बक रहे, 'आर्य' तो भी कहलाते;
नाम पूर्वजों का अपने ही आप डुबाते।
चल रही छुरी है जाति पर, इनको क्या परवाह है;
(सच है) हैं उनको छुरियाँ क्या, जिन्हें तलवारों की चाह है?

हा—

शरण नहीं पाती हिंदी हिंदू के घर में!
ऐसी कहाँ मिसाल मिलेगी दुनिया-भर में?
अपनी मा को छोड रहे हैं बच्चे यों जब,
और लोग अपनावेंगे हा! उसको क्यों कब?
क्यों उरदू का सिक्का यहाँ जमा हुआ भरपूर है?

क्या हिंदी हिंदुस्थान को छोड़ जाय, मजूर है ?
वीरों से यह भरा हुआ पंजाब-प्रांत है ;
पर हिंदी के लिये न-जाने क्यों अशांत है ?
हिंद-देश का शीश-रूप यह है किरीट-धर ;
पर होता है यहाँ नहीं हिंदी का आदर !
जो ले निशान नागरी का आप बढ़ें आगे जरा ;
तो सूखा हिंदुस्थान यह एक बार फिर हो हरा ।

द०—तो क्यों महाराज, आप परचारक है, परचारक ? आपका नाम शौशंकर तो नहीं है शौशंकर ?

पर०—'शौशंकर' क्या ? अरे तुम हिंदू होकर और आर्य-वंशज होकर एक वाहरी लिपि की बदौलत अपने आप अपने नाम बिगाड़ते हो ! मेरा नाम शिवशंकर है शिवशंकर ।

द०—अच्छा, तो महाराज शिवशंकरजी, आपका कहना वजा है, यानी वाकई जुवान हिंदी या नागरी या क्या—। मेरा मतलब यह है कि आपको किस किस्म की नालिश करनी है , या अपील वगैरह; आखिर वात क्या है ?

पर०—तुमको क्यों वतलाऊँ ? तुम क्या कोई वकील हो ?

द०—वकील तो नहीं हूँ, लेकिन मैं वो ऐंजिन हूँ ऐंजिन कि जिससे बहुत-से वकीलों की गाड़ी—वस, अब आगे न पूछिए । हाँ, अपने आप ही समझ लीजिए, क्योंकि

अगर मैं कह दूँगा तो बहुत-से वकील साहबान बुरा मान जायँगे। तो क्या कोई फौजदारी का मामला है ?

पर०—अजी आप अपना रस्ता लीजिए, मेरी कुछ परवा न कीजिए, मुझे मरने दीजिए।

द०—मैं तो सिर्फ यह दर्याफ्त करता हूँ कि फौजदारी में आपका क्या मुकदमा है या दीवानी मे क्या दावा ? किसी ने आपके दुश्मनों की मरम्मत तो नहीं कर दी, यानी आपके शरीर के अंग-पिरतिंगों की समालोचना या क्या कहते हैं उसे ?

पर०—मुझे सिर्फ कहा-सुनी करनी है।

द०—क्या आपसे किसी ने कहा-सुनी की ?

पर०—नहीं, मैं ही कहा-सुनी करना चाहता हूँ।

द०—भला ! किससे ?

पर०—तुमसे और (दर्शकों की ओर) इनसे, जो यहाँ बैठे हैं।

द०—ओ हो, तब तो मैं बेफायदे ही आपके साथ इतनी देर तंग हुआ !

पर०—जी हाँ, आप घबड़ाते क्यों है ! आज आया है ऊंट पहाड़ के नीचे। तुम लोगों ने परदेसियों के बड़ा नाक में दम कर रक्खा है।

द०—(आश्चर्य से) भला आपको क्या कहा-सुनी करनी है ?

पर०—यही कहना है कि—

हिंदी—भाषा नहीं—एकता की है सीढ़ी;

बढ़ते चलिए आप सभी पीढ़ी-दर-पीढ़ी।
फिसल पड़े जो वीर, उठें वे सब अब मिलकर;
पकड़ हाथ से हाथ चढ़ चलें सभी सँभलकर।
सोकर सुस्ती की गोद में क्यों हो आँखें मींचते;
क्यों आर्य-भूमि पर यों पड़े किलकिल काँटे खींचते?
नहीं तुम्हारी बात सुनाई देती हमको;
नहीं हमारी दशा दिखाई देती तुमको।
उठो, किनारे नाव मातृ-भाषा की लाओ:
देखो, देखो, डूब न जावे, इसे बचाओ।
वीरो! न तनिक पीछे हटो, यह 'नेशन' का काम है;
यह नाव नहीं, भाषा नहीं—डूबा जाता नाम है।

(दोनों ओर से दो आदमियों का प्रवेश, लंबे-लंबे बाँस लिए हुए; एक दूसरे को घूरते हैं और फिर सहसा एक दूसरे की ओर पीठ फेरकर खड़े हो जाते हैं)

पर०—हैं! यह क्या चमत्कार! अरे भाई, तुम कौन हो? यह कुंभकर्णी छड़ी लिए किसे ढूँढ़ते हो? क्यों आपस में रूठे हो? (एक का हाथ पकड़कर) इधर तो देखो!

एक—मैं 'आर्य-भाषा' का पक्षपाती हूँ।

दूसरा—(फिरकर) और मैं 'हिंदी' का। बस, मेरा इनका यही मतभेद है!

एक—बस, अब या तो ये ही या मैं ही सम्मेलन में—

पर०—क्या आर्य-भाषा और हिंदी कोई जुदी-जुदी चीज़ें हैं ? अरे एक ही चीज़ के नामों पर लड़नेवालो,

चाहे कुछ भी कहो, आर्य-भाषा है हिंदी ;
क्यों आपस में झगड़ उड़ाते उसकी चिंदी ?
हठ-धर्मी से भेद-भाव को वृथा बढ़ाते ;
मातृ-प्रेम को क्यों सूली पर आप चढ़ाते !

(एक की ओर)

क्या तनिक-तनिक-सी बात पर लड़ना उत्तम कर्म है ?

(दूसरे की ओर)

या आर्य-जाति के गले पर छुरी फेरना धर्म है ?
आर्य-जाति के अंग सभी हैं भाई-भाई ;
किंतु दुराग्रह ने है इनकी मति पलटाई ।
केवल शब्दों पर हैं ये आपस में लड़ते ;
हँसता है संसार इन्हें यों देख झगड़ते !
हा भारतीयता ! आज क्या फूटे तेरे भाग हैं,
जो अलग-अलग हम गा रहे अपने-अपने राग हैं ?

(एक दूसरे की ओर देखते हैं)

एक—कहना आपका ठीक है, मगर मैं अपने मुँह से 'हिंदी' शब्द न निकालूँगा ।

दूसरा—और मैं 'आर्य-भाषा' न कहूँगा ।

पर०—अजी तुम 'आर्य-भाषा' कहे जाओ और तुम

हिंदी । पर आपस मे मिलो तो सही । मिलकर काम तो करो । हहँ:— (खाँसता है)

द०—क्या कुछ गाने का इरादा है ?

पर०—नहीं ; ऐसा तो कुछ नहीं ।

द०—नहीं, कुछ तो—

पर०—अजी मेरा गाना तो बढ़िया होता है; आपको वैसे ही मालूम हो गया होगा या हो जायगा। क्या कहूँ, आपके सामने गाने से उतना फायदा होता नहीं दीखता जितना रोने से—

द०—नहीं, कुछ तो सुनाइए—

दोनों मनुष्य—हाँ-हाँ, सुनाइए—

पर०—सुना तो दूँ, पर यही डर है कि यहाँ गांधर्व-महाविद्यालयवाले मेरे पीछे पड़ जायेंगे और हजार मना करने पर भी मुझे अपने यहाँ का प्रिंसिपल बनाकर ही छोड़ेंगे !

द०—आपकी बड़ी महरबानी होगी, अगर आप एक ही चीज़ सुना देंगे तो—

दोनों मनुष्य—जी हाँ, बेशक—

पर०—यह जो कहिए कि आप लोग घर से इस बात की कसम ही खाकर निकले थे कि जब तक आज किसी परदेशी का भद्दा, बेसुरा और बेताला गाना न सुनेंगे, तब तक घर ही न लौटेंगे—

द०—नहीं, यह बात नहीं—

पर०—तो फिर और क्या ? घर से पिटकर तो नहीं आए हो ?

द०—जब तक आप गाकर अपना मतलब नहीं समझावेंगे, तब तक यहाँ के लोग आपकी एक नहीं सुनने के ; क्योंकि यहाँ वीर लोग रहते हैं जो रोना पसंद नहीं करते। बस, समझ लीजिए—

पर०—तो लीजिए। (दर्शकों की ओर) भाइयो ! अब आप लोगों के अनुरोध से मुझे गाना पड़ता है। मैं नहीं जानूँ—अगर किसी को खाँसी, बुखार, जुखाम, सिर-दर्द वगैरह की शिकायत हो जाय तो, क्योंकि मेरा गला—

द०—उसके लिये आप न घबराइए, सब बीमारियों की पड़नानी 'अमृतधारा' यहाँ मौजूद है।

पर०—मैंने तो सुना था, वह जड़ी-बूटियों से मिलने पहाड़ों पर गई है ?

द०—अच्छा, अब बेफायद देर न कीजिए।

पर०—लीजिए— (गाना)

अब तो हिंदी की ओर फिरो ;
अपने घर की भी फिक्र करो।
गहरी है भाषा की खाई, बिछुड़ रहे भाई से भाई ;
छोड़ इसे तुम किधर जा रहे, हिंदूपन का ध्यान धरो ॥ १ ॥
अब तो हिंदी की०

घर में जो दीवार खड़ी है, उससे ही हालत बिगड़ी है ;
आओ मिलें हटाकर उसको, हिंदी-हित से हृदय भरो ॥ २ ॥
अब तो हिंदी की०
कैसे सुख का समय आज है, जुड़ा हुआ जो यह समाज है ;
लाज बचे आर्यों की जिससे, उस हिंदी का क्लेश हरो ॥ ३ ॥
अब तो हिंदी की०

सब—वाह ! वाह !!

द०—क्या कहना है ! महाराज, मेरी गुस्ताखी माफ़ कीजिए और आज मेरे ही यहाँ का न्यौता मंजूर फ़रमाइए, और मैं जो थोड़ी देर पहले वकीलों का दलाल था उस बात को भूल जाइए । चलिए—

पर०—यह कहिए, तो अब कौन-से वकील के पास—हः-हः-हः—

(हँसता है; सब हँसते हुए जाते हैं)



'रेगड़-समाचार' के ऐडीटर की धूल-दच्छना
(कौंसिल की उम्मेदवारी का एक सीन)

(कल घर के हिसाब में डेढ़ आने की कहीं भूल रह गई थी। उसी को लेकर आज सबेरे ४ बजे से ऐडीटर और ऐडीटराइन में झगड़ा हुआ, जिसके सिलसिले में ऐडीटराइनजी ने साधारण गालियों के अलावा बहुत-सी ऐसी असाधारण गालियाँ भी ऐडीटर साहब को सुनाईं जिनका मतलब प्रसिद्ध कोषकार प० मथुराप्रसाद मिश्र भी, अगर आज जीवित होते तो, न बता सकते। इन गालियों के सामने ऐडीटर साहब का भाषा-पांडित्य रक्खा रह गया, और यह देखकर कि क़लम की लड़ाई में मैं भले ही अरस्तू को भी हरा दूँ, मगर ज़ुबान की लड़ाई में एक मामूली अपढ़ औरत से भी हार सकता हूँ, उनको बड़ी लज्जा आई, और अपने ऊपर क्रोध भी। वे घर से असहयोग करके चल दिए, और अब इस समय मकान के आस-इधर-उधर घूम रहे और कुछ बुड़बुड़ा रहे हैं—बल्कि अब के ` का पूरा जवाब देने के लिये अभ्यास कर रहे हैं, और यह भी सोच रहे हैं कि ऐडीटराइनजी मुझे बुलाने के लिये किसी आदमी को भेज

तो घर चला जाऊँ। उस आदमी को ढूँढ़ने मे देर न लगे, इसलिये ऐडीटर साहब घर के आस-पास ही घूम रहे हैं। इस समय दोपहर के दो बजे हैं, लेकिन एडीटर साहब को एक दाना तो क्या, खाना-नहाना तक मयस्सर नहीं हुआ है। उधर घर मे चूल्हा नहीं जला है, और ऐडीटराइनजी चक्की के पाट पर औंधा मुंह किए कुछ विचित्र ही राग अलाप रही हैं, जिसको सुनकर ऐसा-वैसा आदमी यही नहीं समझ सकता कि यह किस रागिनी का धुरपद है ')

(डाकिए का आना और ऐडीटर साहब को डाक देना। ऐडीटर साहब का पहली चिट्ठी को खोलकर पढ़ना और गुस्से मे सारी डाक सड़क पर फेंक देना)

ऐडी०—(फिर डाक बाँचते हुए) कंबख़्तों ने नाक में दम कर रक्खा है ! मन में आता है कि डूब मरूँ गंगाजी में, इन उम्मेदवारों के मारे। पब्लिक वर्क ! पब्लिक वर्क ! ऐसी-तैसी में गया पब्लिक वर्क ! यहाँ प्राइवेट वर्क ठीक होता ही नहीं है, इन्हें पब्लिक वर्क की सूझी है ! किस-किस की छापूँ और किस-किसकी न छापूँ ! किसका बुरा बनूँ और किसका न बनूँ ! बस, जब कि भले आदमियों को इस तरह तंग होना पड़ता है, तो आज यह बात साबित हो गई कि भारतवर्ष स्वराज के योग्य नहीं है। हमें न चाहिएँ ऐसी कौंसिलें, जिनके लिये भले आदमियो की यों कुत्ता-घसीटी हो। ठीक समय पर खाने को नहीं मिलता,

आज सारा देश दाने-दाने के लिये तरस रहा है, दो-ढाई बज गया है लेकिन देश अभी नहाया तक नहीं है, और इन दुष्टों को अपनी राय की फ़िक्र पड़ रही है !

(बा० मतलबसहाय उम्मेदवार का आना)

मतलब०—(झुककर) आदाब-अर्ज़ करता हूँ जनाब—

ऐंडी०—(झुँझलाकर) जनाब की जान बख़्शिए, मेहरबानी कीजिए ।

मतलब०—चुनाव के बारे मे तो जनाब वही बात रही, जो आपने फरमाई थी । आपकी अटकल भी क्या सची उतरती है ! आखिर तजुर्बा भी तो दुनिया में कोई चीज़ है ।

ऐंडी०—(झुँझलाकर) तजुर्बा दुनिया में कोई चीज़ नहीं—बस कह दिया ।

मतलब०—जी हाँ, हो सकता है, मगर आज आप—

ऐंडी०—तजुर्बेकार आदमी डेढ़-डेढ़ आने पैसे के पीछे गालियाँ खाते हैं—

मतलब०—बेशक, मुल्क में इत्तिफाक नहीं, और गरीबी भी बहुत है ।

ऐंडी०—और वे गालियाँ भी ऐसी कि जिनका कोई मतलब भी न समझ सके ।

मतलब०—बेशक, देश में सुधार की बहुत कुछ ज़रूरत है ।

ऐडी०—यही नहीं, दो-दो तीन-तीन बजे तक उन्हें भूखा भी रहना पड़ता है।

मतलब०—बजा है आपका कहना; सरकार ने लोगों के हज़ार रोने-भींखने पर भी चार लाख टन अनाज देश के बाहर—

ऐडी०—उनके नहाने के लिये पानी तक नदारद !

मतलब०—वल्लाह, कुछ न पूछिए, बारिश ने अब की साल कतई खेंच की है। इधर नलों में भी पानी वक़्त पर नहीं आता। आपने बहुत ठीक फ़रमाया। वैसे राय तो आपकी मेरी ही तरफ है न ?

ऐडी०—हरगिज़ नहीं, हरगिज़ नहीं; घर-घर में लड़ाई हो रही है।

मतलब०—आख़िर क्यों ? हमें तो आपका ही भरोसा है—

ऐडी०—बस, अब आगे बात मत करो। मैं किसी का दबैल नहीं। चले आए वहाँ से पेट फुलाकर ! ख़ुशामदी टट्टू, चपरगट्टू—

मतलब०—(सुनी अनसुनी करके) और हमारा आपका कोई आज से दोस्ताना है ? आठ बरस हुए तब एक बार रात के बारह बजे मैं आपके एक पड़ोसी से मिलने आया था। उस वक़्त आपने इनायत करके मुझे उनका मकान बतला

दिया था। हालाँ कि थी वह अँधेरी रात, लेकिन आपको शायद याद होगा कि वो शख़्स मैं ही था।

ऐडी०—यह बात आपसे किसने पूछी? आप जानते हैं, मेरा समय कितना क़ीमती है? मुझे मरने को भी समय नहीं मिला करता, बात करना तो दरकिनार।

मतलब०—और सबसे बड़ी बात यह है कि मै उन लोगों में से हूँ जिनकी राय न नरम है न गरम, यानी ऐसी है कि हरदिल-अज़ीज़—कहिए जिससे मिल जाय। हाँ मे हाँ मिलाकर मै सरकार के और पब्लिक के बीसियो काम निकलवा दूँगा। आपको याद होगा कि संवत् चौंतीसे के अकाल में हमारे यहाँ से कितनी ख़ैरात हुई थी? और वह सब इसलिये कि हमारे बाबा ने सब काम आपके नाना के भाई के ससुर के हाथ में सौंप रक्खा था।

(और भी कई उम्मेदवारों के आदमियों का आकर ऐडीटर साहब को घेरना)

ऐडी०—अब इसमे तनिक भी संदेह नहीं कि गाधीजी बड़े भारी महात्मा हैं, क्योंकि इन्हीं लोगों के चाल-झपट से भले आदमियों को बचाने के लिये उन्होने असहयोग की सलाह दी थी। (उम्मेदवारों से) बस, मैं किसी को राय न दूँगा, मैं असहयोग कर चुका।

सब—किससे? किससे?



ऐडी०—(बेतरह गला फाड़कर) अरे कमबख़्तो! मुझे छोड़ो, मैं
ीटरी से भी असहयोग कर दूँगा।

(पृष्ट ८१)

ऐडी०—घर से भागकर तो यहाँ आया हूँ, अब यहाँ से भागकर कहाँ जाऊँ—जहन्नुम मे ?

(सब लोग 'हमारे घर चलिए', 'हमारे घर चलिए' कहकर ऐडीटर साहब की खींचा-तानी करते हैं। गुल-गपाड़ा मचता है। ऐडीटर साहब बड़ी मुश्किल से हाथ-पैर छुड़ाकर पहले चिट्ठियाँ और फिर धूल फेंक-फेंककर मारते हैं। फिर भी लोग उनसे लिपट जाते हैं)

ऐडी०—(बेतरह गला फाड़कर) अरे कमबख्तो ! मुझे छोड़ो, मै ऐडीटरी से भी असहयोग कर दूँगा। भगवान जाने, आज सवेरे मै किसका मुँह देखकर उठा था !

(लोग उन्हे जबरदस्ती खींचकर ले जाते हैं ; परदा गिरता है)

घोंघा-बसंत विद्यार्थी

(विद्यार्थी-जीवन का एक दृश्य)

(घोंघा बसंत का हुलिया—कहीं-के-कहीं बटन लगाए हुए; मैली धोती या पाजामा पहने हुए, जिसमें दो-चार पेवंद ऐसे लगे हों जो दूर ही से देख पड़ते हों; सूरत देखने में उजबक मालूम होता हो; चलने में पैर सीधे न पड़े; बात करने में गर्दन को झटका-सा देने की और प्रायः सीधी आँख मींचकर बाईं आँख को बहुत अधिक खोलने की आदत हो; मोटा-ताज़ा मदेसिल बदन हो)

घोंघा-बसंत—(भागकर आता हुआ और दम फूल जाने के सबब से लंबी साँस लेता हुआ) सब-के-सब कंबख़त पीछे पड़े हैं ! 'शिकारपुरी', 'शिकारपुरी' करके मेरी जान आफ़त में कर डाली है, जैसे कोई शिकारपुर में आदमी ही न रहते हों ! ऐसा जानता तो मैं कभी यहाँ न आता, बल्कि आगरे जाता ! खाट के पाए से चुटिया बाँधकर रात-रात-भर पढ़ा, तब कहीं इंटरमीडियट पास हुआ । और, कहा गया था कि संसार के इतिहास में जिसे तुम सबसे बड़ा आदमी समझते हो

उस पर निबंध लिखो, सो मैंने अपने बापूजी पर लिख दिया, जिससे कि मुझे सेकंड डिवीज़न मिला, हालाँकि वे पटवारी है। पर यहाँ के लोग गुणावली तो देखते नहीं; घर का पता पूछते हैं कि 'कहाँ के रहनेवाले हो ?, कहाँ के रहनेवाले हो ?' अरे, रहनेवाले है तुम्हारे घर के; कहो क्या कर लोगे तुम हमारा ? कह दिया करता था कि ज़िला बुलंदशहर का रहनेवाला हूँ, पर अब किसी कंबख़्त ने—भगवान उसे सौ बरस तक सब विषयों में फेल करे और सत्यानास जाय उसका—आस्तीन का साँप, कुल्हाड़ी का बेटा कहीं का! और फिर, आपको बोलना हो बोलिए—जी हाँ, न बोलना हो न बोलिए, अपना रास्ता नापिए, चाल दिखाइए, हवा खाइए, सवारी बढ़ाइए वगैरह-वगैरह और भी बहुत-से अच्छे-अच्छे वाक्य हैं। हम जहन्नम के रहनेवाले सही, क्या कर लेंगे आप हमारा ? चखुश! यह बात दूसरी है कि सारा अवा का अवा ही बिगड़ गया है! मैं अभी बतला सकता हूँ कि लखनऊ से इलाहाबाद तक जाने पर कौन-कौन-से स्टेशन बीच मे पड़ेंगे। यही क्यों, आप यहाँ से लगाकर उटकमंड तक किसी भी रेल का टाइम या स्टेशन का नाम पूछ देखिए। देखिए. कैसा फरा-फर बताता चला जाता हूँ। अरे, हम चाहे घोंचू हों, चाहे वपाचू हो, चाहे तामलोट हों, चाहे बैंगनदास हों, तुम हमारे गुण देखते हो या खामखाँ हवा से लड़ते हो ! कॉलेज का

घंटा जब बजने लगता है तब कोई कंबख्त एक जूता उड़ा देता है, कोई टोपी चुरा लेता है—(कुछ आहट सुनकर और चौकन्ना होकर, नाक पर उंगली रखकर देखनेवालों से चुप रहने का इशारा करता हुआ, कुछ धीरे से) आए सौरे, यहाँ भी आए। (इधर-उधर देखकर जल्दी से एक ओर छिप जाता है; दूसरी ओर से पाँच-छ. लड़के हँसते हुए आते हैं)

एक लड़का—अबे यार, गया किधर ? कहीं किसी धोबी-ओबी ने तो नहीं बाँध लिया !

दूसरा—मेरे सामने तो इधर ही आया था (चारों ओर देखकर) न हो तो चलो और ही कहीं ढूढे ।

(सामने से, रूमाल में कुछ बांधे हुए, एक लड़का आता है)

सब-के-सब—आइए वर्माजी, आइए ; आप ही की कसर थी ।

एक—भला यह तो बतलाइए कि रूमाल में क्या बांधे लिए जा रहे हैं ?

दूसरा—अरे भाई टोको मत, ससुराल से मिठाई आई है ।

तीसरा—वे क्या बेचारे मना करते हैं, खानी हो तो खा लो ।

वर्माजी—यारो, है तो चीज़ खाने ही की, पर तुम्हारी हिम्मत नहीं पड़ सकती ।



चौथा—वर्माजी, यह क्या? क्या हम सबको उल्लू बनाने का सामान किया था या सचमुच—

सब—क्यों ? क्यो ?

वर्माजी—यह तो किसी गधे के खाने की है।

(सब हँसते हैं)

एक—मालूम होता है, ससुरालवालो ने आखिर आपको पहचान ही लिया !

दूसरा—आखिर दिखलाइए भी तो कि क्या है।

तीसरा—अजी इधर लाइए। (छीनकर खोलता हुआ) दावत उड़ने दीजिए, ऐसा चकमा किसी और को दीजिएगा।

(खोलने पर उसमें शतरे, केले, अखरोट आदि के छिलके निकलते हैं। सब अचरज करते हैं)

चौथा—वर्माजी, यह क्या ? क्या हम सबको उल्लू बनाने का सामान किया था या सचमुच—

वर्माजी—(बीच में बात काटकर) सचमुच क्या, आप सब जानते ही हैं कि अब की वार मुझे एक शिकारपुरी साथी ... है जिसके मारे मेरे कमरे का नाक में दम रहता है। ... साल साफ़-सुथरा रखने का इनाम मुझे मिला था, अब की ... यह एक ऐसा साथी अटका है कि मार कमरे को ... किए रहता है। और तो और, आपको फल खाने का ... चर्राया है ! देहात में तो कभी मिलते नहीं थे, अब ... त करते यह हैं कि फल खाने के बाद छिलकों का ... करते हैं। (सबका हँसना) पूछने पर जवाब देते

है कि 'गूदा नहीं तो सुगंध तो बाकी है, फेंक कैसे दूँगा, मैंने तो सुगंध-समेत के पैसे दिए थे, मेरे पैसे क्या कोई मुफ्त के थे? इस तरह कर-करके कमरे में छिलकों का ढेर लगा दिया है। (सब हंसते कहता है कि शतेरे के छिलके सुखाकर उनका चूरन कर लूँगा और खाते समय दाल-तरकारी में डाल लिया करूँगा। इससे सुगंध भी आ जाती है और अजीरन भी दूर हो जाता है। (सबका हँसना) जब अपनी खाट के नीचे जगह नहीं रही तब आप मेरी खाट के नीचे अटंबार लगाने लगे। (सबका हँसना) जी हाँ, मक्खियों की भिनभिनाहट के मारे सोना-बैठना हराम हो रहा है। (सबका हंसना) कुछ न पूछो यारो, पूरी मुसीबत में हूँ। (फिर हँसना) अब जब नहीं सहा गया तो यह शिकारपुरी तोहफा वार्डन साहब को बतौर बड़े दिन की सौगात देने जा रहा हूँ। (सब हँसते हैं) अब या तो वही इस कमरे में रहेगा और या मैं ही। सब लोग हंसते हैं) सच कहते हैं, अब एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

(सब लोग हँसते हैं, घोंघा-बसंत कुपित होकर बाहर निकल पड़ता; सब लोग हँसते और अचरज करते हैं; घोंघा-बसंत क्रोध से आँखें निकाल कर फटकारने लगता है, और क्रोध के आवेश में अपना पैर भी मारता है)

घोंघा-बसंत—खबरदार, मेरा नाम लिया तो।

ऐसे लड़के ही कहीं नहीं देखे ! अपनेआप तो मेरे तकिए के नीचे कभी पिन लगा देते है, कभी जूता रख देते है—उस दिन कुल्हड़ में गोबर और ऊपर मलाई रखकर मुझे रबड़ी बताकर खिला दिया—बाहर सोता हूँ तो खाट-समेत उठाकर नदी-किनारे पटक आते है, भीतर सोता हूँ तो बाहर से कुडी लगा देते है; सो तो कुछ नहीं, अब कहीं दो छिलके पड़े रह गए होंगे सो सब-के-सब मेरी रिपोर्ट करने चल दिए ! (वर्माजी से) मुझे भी स्वीकार नहीं है आपके साथ रहना। बस, यह निश्चय हुआ कि मैं कोई दूसरा कमरा खोज लूँ और आप दूसरा साथी। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है कि 'दुष्ट-संग नहिं देइ विधाता।' (सब हँसते हैं)

एक—अच्छा भाई, अब जो हुआ सो हुआ, मेल हो जाना चाहिए। तनिक-तनिक-सी बाते वार्डन साहब के पास पहुँचीं तो आखिर बदनामी किसकी है, यह भी तो सोचो।

दूसरा—ठीक है, ठीक है। आप लोग क्षमा कीजिए एक दूसरे को।

वर्माजी—अरे यार, रोज का झगड़ा है, कोई आज का ही थोड़े है।

घोंघा०—(बाहे चढाता हुआ) झगड़ा है तो लड़ लो, आ जाओ।

तीसरा—चलो हुआ म्याँ, चुप भी रहो।

वर्मा—देख लीजिए, अब आप ही देख लीजिए।

घोंघा०—हूँ:, वार्डन साहब हमे फाँसी लगा देंगे!

वर्मा—और उस पर तुर्रा यह कि आप अकड़े ही चले जाते हैं।

घोंघा०—अकड़ते क्या है, तुम बातें ही ऐसी करते हो। हम तो अकड़ते नहीं; हमें क्या कुत्ते ने काटा है! तुम्हीं अकड़ते हो। जब देखो तब दिल्लगी ही दिल्लगी! दिल्लगी के सिवा दूसरी बात ही नहीं! मैं तो कहता हूँ, कौन भी बोले, कौन भी बोले। (सबका हँसना) बस, यही तो है। बहुत किया तो ठिः ठिः ठिः ठिः हँस दिए।

(सबका हँसना)

एक—आपने बजा फरमाया। आपने तो जनाब इस लेक्चर में यह-वह बातें कह डाली है जो सुकरात के बाप ने भी न कही होंगी, जब कि उसने वारन हेस्टिंग्स पर चार्ज लगाया था। (सबका हँसना)

दूसरा—सच है, हम सब लोग अपने-अपने हाथ जोड़कर आपके अंग-प्रत्यगों से क्षमा माँगते हैं।

(सबका हँसना)

तीसरा—क्योंकि हकीम अफलातून कह गए हैं कि गुस्सा करने से कूवत घटती है कि जिससे चेहरे पर शिकन पड़ती है, जवानी में बुढ़ापे के आसार नमूदार होते हैं,

जो कि बाद को पाउडर और पोमेड लगाने और ताक़त की दवाएँ खाने पर भी वापस नहीं मिलता।

(सब हँसते हैं; घोघा-बसंत नाराज़ होता है)

चौथा—है है, आप व्यर्थ आपे से बाहर न हों, नहीं तो प्रलय हो जाने में कोई संदेह नहीं, भला हम कहीं आप-के शरीर से कोई अनुचित या आउट-आफ-ऐटीकेट बात कह सकते हैं?

(सबका हँसना)

पाँचवाँ—अभी तो आपने मालकौंस का धुरपद ही अलापा है, कहीं दुलत्ती झाड़कर ताल भी दे दी तो एकाध का ढेर हो जायगा!

छठा—भला जो आप हैं सो कहीं कोई दूसरा हो सकता है!

जन्म भर रोते रहे डारविन, उनको न मिला,
हमने पाया है मगर आज मिसिंगलिंक * यहाँ।

घोघा०—(आप-ही-आप) अब इन दुष्टों से मैं कहाँ तक लड़ूँगा। ये सब एक हो गए हैं। (लड़कों से) अच्छा तो अब आपको यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि मुझमें अधिक सहनशीलता नहीं है। दूसरी बात यह है कि मैं अपने साथी की रिपोर्ट करने जा रहा था, अब आप लोगों के

---

* आदमी और बंदर के बीच का जीव।

कहने-सुनने से चुप हो रहूँगा । आप लोग या तो इन्हें समझा लें और या मेरे लिये कोई दूसरा कमरा खोज दें ।

सब—स्वीकार है, स्वीकार है ।

घोंघा०—मैं सच कहता हूँ कि हरेक बात की एक सीमा होती है । अगर अबकी बार किसी ने मुझसे बेजा हरकत की और मुझे जबरदस्ती मुर्दा बनाकर निकाला, या ऐसी-वैसी चीज खिलाई तो बस, समझ लीजिएगा ।

सब—स्वीकार है, स्वीकार है ।

घोंघा०—मैं किसी से कुछ न कहूँगा, एकाध को उठाकर दे मारूँगा ।

सब—अवश्य, अवश्य ।

एक—हमें आपकी सब बातें स्वीकार है, बस अब मेल हो जाने दीजिए । आइए वर्माजी, आइए ।

(दोनों के हाथ मिलवाए जाते हैं; हिप-हिप-हुर्रे करते हुए सब जाते हैं)

हमारी व्यंग्य और हास्य-रस की पुस्तकें



रायबहादुर

मोलियर संसार-भर में, हास्य-रस की रचना में, अपना सानी नहीं रखते। यों तो मोलियर के और भी छोटे-छोटे कई ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद हो चुका है, कितने उनके आधार पर भी लिखे गए हैं, पर रायबहादुर का स्थान उन सबसे ऊँचा है। इसमें ख़िताब की लालच में मर मिटनेवाले, उपाधि के लोभ में किसी भी उपद्रव से बाज़ न आनेवाले, स्वल्प शिक्षित पर सर्वज्ञता का दम भरनेवाले, मनचले मूर्ख—बरफूँकबहादुर—का ख़ाका ख़ासी तौर से खींचा गया है। फ़्रांस, महाराष्ट्र, अवध, आगरा आदि कई देशों की नोक-झोंक, फ़ैशन, चाल-चलन, ठाट-बाट और चोचलों का मज़ा उठाना हो, तो इस पुस्तक को आरंभ कीजिए, फिर क्या मजाल कि आप उसे ख़तम किए बिना छोड़ें। जिसने हँसने की क़सम खा ली हो, वह भी इसे पढ़कर खिलखिला उठेगा। बस, पुस्तक मँगाकर पढ़िए और रायबहादुर की कारगुज़ारी पर हँसिए। मोलियर का चित्र भी है। २०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल ।।।), सुंदर रेशमी जिल्द १)

ईश्वरीय न्याय

लेखक, अध्यापक श्रीरामदास गौड़ एम्० ए०। यह व्यन्य-नाटक है। गौड़जी काशी-म्युनिसिपैलिटी में शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। इस नाटक में आपने अत्यंत मार्मिक ढंग से दिखाया है कि अछूतों के उद्धार और राष्ट्रीय शिक्षा-सुधार में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और अछूतों के प्रति बहुत प्रेम दिखाने वाली हिंदू-सभ्य-समाज अवसर पड़ने पर किस तरह बग़लें झाँकने लगती है। मूल्य ॥)

गधे की कहानी

पं० भूपनारायणजी दीक्षित ने यह 'गधे की कहानी' लिखकर बाल-साहित्य के एक मुख्य अंग की पूर्ति की है। गधे ने अपनी कथा बड़े रोचक ढंग से कही है। भाषा ख़ूब सरल और मुहाविरेदार है। गधे ने अपनी भाषा में मानव-समाज पर कैसी हास्य-जनक आलोचनाएँ की हैं, यह देखने ही योग्य है। पुस्तक सचित्र है। मूल्य ॥।), सजिल्द १)

नटखट पाँड़े

एक नटखट लड़के की आत्मकथा। आदि से अंत तक एक भी पृष्ठ ऐसा नहीं, जो नीरस और रूखा हो। एक-एक शब्द में हास्य-रस भरा हुआ है। नटखट पाँड़े का विद्यारंभ, डॉक्टर महोदय की दुर्दशा, बोर्डिंग-हाउस के अध्यक्ष महोदय की दुर्गति, नटखट पाँड़े का रात को भाग जाना, गाने की मजलिस, सारी कहानी इतनी अनूठी और दिलचस्प है कि जिस लड़के ने किताब खोलने की कसम खा ली हो, वह भी इसे समाप्त किए बिना नहीं रह सकता। कितने ही प्रसंग तो ऐसे हैं, जहाँ मारे हँसी के पेट में बल पड़ जायँगे। इसके लेखक

ो वही पं० भूपनारायणजी दीक्षित हैं। पुस्तक में कुल १४ तिरंगे और हाफ़टोन चित्र हैं, जिनसे इसकी सुंदरता और भी बढ़ गई है। मूल्य १॥), सजिल्द २)

प्रायश्चित्त-प्रहसन

'माधुरी'-संपादक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न-लिखित। देशी होकर भी विदेशी चाल चलनेवालों का इसमें ख़ूब ही ख़ासा ख़ाका खींचा गया है। पढ़कर हँसते-हँसते पेट में बल पड़ने लगेंगे। बड़ा ही सभ्य हास्य-रस-पूर्ण प्रहसन है। मूल्य ।)

मिस्टर व्यास की कथा

लेखक, आनंद-संपादक पं० शिवनाथजी शर्मा। हास्य-रस के वयोवृद्ध लेखकों में पं० शिवनाथजी शर्मा का स्थान सर्वोपरि है। यह पुस्तक समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिये समय-समय पर लिखी गई भाव-भरित, व्यंग्य-पूर्ण, विनोदी, मर्म-स्पर्शी कथाओं का संग्रह है। मिस्टर व्यास की कथा वास्तव में व्यास की कथा ही है। इसे बराबर पढ़ते जाइए, कहीं रुकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। एक के बाद एक ऐसे नवीन प्रसंग आते हैं कि उनको पढ़ते ही बनता है। क्या मजाल कि इससे कभी तबियत ऊब जाय। पढ़ते जाइए, लेखक की कलम की करामात सराहते जाइए। हास्य-रस की कुछ पुस्तकें हिंदी-साहित्य में इधर निकली हैं। गाली-गलौज और असभ्य हास्य ही में लेखकों ने वे पुस्तकें रँग डाली हैं। पर वास्तव में हास्य-रस किसे कहते हैं, यह किसी ने नहीं बताया। सौम्य और चुटीली भाषा में किसी बात की बुराई बताकर उसे दूर करने की कला सीखनी हो, तो यह पुस्तक अवश्य पढ़िए। सभ्य मज़ाक किसे कहते हैं, किसी को ख़ूब पेट-भर बनाइए, क्या मजाल कि उसे बुरा लगे। यही नहीं, इसमें आपको हास्य-रस के लेख लिखने के अनेक नए ढंग मालूम होंगे। फिर

भी आप इनका कोई लेख व्यक्ति-गत आक्षेप या असभ्य भाषा से लिखा न पाइएगा । सभी लेख अपने ढंग के नए और निराले हैं मूल्य लगभग ३)

मूर्ख-मंडली

लेखक, पं० रूपनारायण पांडेय । स्वर्गीय श्रीद्विजेंद्रलाल राय के अत्यंत मनोरंजक और सभ्य हास्य-रस-पूर्ण प्रहसन के आधार पर इसकी रचना की गई है । इसे पढ़कर मारे हँसी के आप लोट पोट हो जायँगे । हम दावे के साथ कहते हैं कि इससे बढ़कर मनोरंजक प्रहसन आपने हिंदी में न पढ़ा होगा ! सभी हिंदी पत्रों और विद्वानों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है । यह पुस्तक पाँचवीं बार छप रही है, इसी से इसकी लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है । मूल्य १)

विवाह-विज्ञापन

लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० । यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि भट्टजी प्रहसन लिखने में कैसे सिद्ध-हस्त हैं । यह भी उन्हीं की लेखनी से निकला हुआ, अपने ढंग का निराला प्रहसन है । विवाह के लिये लोग कैसे लालायित रहते हैं, इसका तमाशा देखने के लिये आप इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें । दो घड़ी मौज की अच्छी सामग्री है । मूल्य लगभग १)

मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय,

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ